वर्ष ४२] * * * [अङ्क ६

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर आश्विन २०२५, सितम्बर १९६८

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.२५ (१५ शिलिंग) जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥ साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

मुरली-समाधि

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण
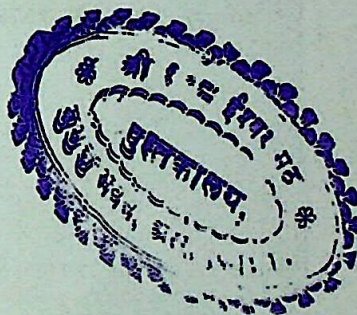
त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

वर्ष ४२ } गोरखपुर, सौर आश्विन २०२५, सितम्बर १९६८ { संख्या ९
पूर्ण संख्या ५०२

मुरली-समाधि

मोहनके हियमें भरी मधुर सुधा रसखान ।
निकली वह मधु सरित-सी बन मुरलीकी तान ॥
निज रस सरिता मधुरमें बृत्ति हुई तल्लीन ।
मुरलि-समाधि लगी, हुए बाह्य चेतना हीन ॥
त्यों ही मोहन-मोहनी सुन मुरली संगीत ।
हुई स्तब्ध बेभान ज्यों चित्रलिखी-सी भीत ॥

याद रक्खो—किसी भी प्रकारसे किसी भी प्राणीके हितका विनाश करना हिंसा है। यह हिंसा मनसे होती है, वाणीसे होती है, कर्मसे होती है। किसीके भी हितनाशकी चाह करना मानस हिंसा है, हितनाशकी बात कहना वाचनिक हिंसा है और हितनाश करना कर्मजनित हिंसा है।

याद रक्खो—कोई भी प्राणी अपना अहित नहीं चाहता; सभी अपना हित—भला चाहते हैं। अतएव सदा मन-वचन-शरीरसे वही करना चाहिये जिसमें दूसरोंका हित होता हो। यही 'अहिंसा' है। इसीका नाम 'मैत्री' है। यह अहिंसाकी—मैत्रीकी वृत्ति प्राणिमात्रके प्रति होनी चाहिये। मानवप्राणी विवेक-सम्पन्न है, अतएव उसपर विशेष दायित्व है। मानवप्राणी यदि परस्पर एक दूसरेके हितसाधनमें लग जाय, सभी सबके हितकी बात सोचें, हितकी बात कहें और हितका काम करें तो सबका भला हो सकता है। यह समष्टि-कल्याण ही वास्तवमें 'मानवधर्म' है।

याद रक्खो—जो धारण करता है, वह धर्म है—जिस आचरण-व्यवहारके द्वारा प्राणिमात्र दुःखसे छूटें, सब सुखको प्राप्त करें, सबकी उन्नति और समृद्धि हो, एवं सभी परस्पर एक दूसरेके सुख-हित-सम्पादनके लिये सचेष्ट रहें। इस प्रकारके सर्वभूत-हितकर आचरणका नाम ही धर्म है।

याद रक्खो—मानव-जगत्में जब इस धर्मका विस्तार होता है, तब जगत्का वातावरण प्रेम तथा शान्तिसे भर जाता है। द्रोह-द्वेष, वैर-हिंसाका अस्तित्व लोप-सा होने लगता है और जब हिंसा नहीं होती तो प्रतिहिंसा कहाँसे होगी। सब सबको प्रसन्न देखना चाहते हैं और सब सबको देखकर प्रसन्न होते हैं।

याद रक्खो—जब मानव-समाजमें द्रोह-द्वेष, वैर-हिंसा तथा प्रतिहिंसा आदि दोष बढ़ जाते हैं तब इनकी प्रेरणासे हिंसा-'परायण होकर मनुष्य स्वयं ही मनुष्यका विनाश सोचने तथा विनाश करनेमें लग जाता है। उसके मन-बुद्धि, उसकी शिक्षा-विद्या, उसका ज्ञान-विज्ञान, उसकी शक्ति-सामर्थ्य, उसकी धन-सम्पत्ति, उसका अधिकार-प्रभाव और उसका आराधन-पूजन—सब इस विनाशके साधन बन जाते हैं।

याद रक्खो—मनुष्यकी शक्ति अपार है और उसकी योजनाएँ अत्यन्त विस्तृत तथा बहुमुखी हैं। उसकी योजनाएँ मन-बुद्धिका निर्माण तथा विकास करनेवाले सत्संग, साहित्यलेखन, खान-पान, गोष्ठी, सभा-सम्मेलन, बड़े-छोटे विद्यालय एवं विश्वविद्यालय; ज्ञानार्जनके लिये छोटे-बड़े आश्रम; विज्ञानकी बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएँ; शक्ति-बल-सामर्थ्य बढ़ानेवाली मल्लशालाएँ, युद्धकला-शिक्षालय, शस्त्रास्त्र-निर्माणकेन्द्र; छोटे-बड़े व्यापारकी मण्डियाँ, विभिन्न वस्तुओंका उत्पादन तथा निर्माण करनेवाले कारखाने, छोटे-बड़े कृषिक्षेत्र; छोटे-बड़े न्यायालय, मन्त्रणालय, राजदरबार, धारासभाएँ और संसदें एवं मठ-मन्दिर-चर्च-मसजिद-अग्निमन्दिर आदि आराधनस्थल यथायोग्य चलते हैं और सभी अपने-अपने क्षेत्रमें काम करनेमें लगे रहते हैं; परंतु मनुष्यकी हिंसापरायणताकी वृत्ति सभी क्षेत्रोंमें उसके प्रत्येक कार्य या साधनका प्रयोग करना चाहती है हिंसामें, उसका फल चाहती है हिंसावृत्तिकी सार्थकता, जिसका परिणाम है 'विनाश'। इसलिये मनुष्यको हिंसावृत्तिका सर्वथा परित्याग करके धर्मपरायण होना चाहिये।

याद रक्खो—धर्मपरायण होनेका अर्थ ही है—प्राणिमात्रके प्रति विशुद्ध अहिंसा और मैत्रीभावना एवं सदा सबका हित सोचने तथा हित करनेकी वृत्ति।

याद रक्खो—इस सर्वभूतहित-वृत्तिका होना ही मानवताकी सूचना है और इसीके विस्तारमें मानवता-विकास है। यही मानव-धर्म है।

'शिव'

मन-वचन-कर्मकी एकता

(पूज्यपाद योगिराज श्रीदेवरहवा बाबाका उपदेश, प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी)

कर्मके विचारसे तीन साधन हैं, जिनके द्वारा हमारे सभी कर्म होते हैं। प्रथम साधन है—मन। मनके द्वारा हमारा जो विचार-संकल्प होता है उसे हम 'मानसिक कर्म' कहते हैं। द्वितीय साधन है—वचन। वाणीके द्वारा हम जो वचन बोलते हैं वह है हमारा 'वाचिक कर्म'। और तृतीय है शरीरके द्वारा होनेवाला कर्म। इसे 'कायिक कर्म' कहते हैं। इन्हीं मन, वचन और कायाद्वारा हमारे सम्पूर्ण कर्म होते हैं। हम अपने मनमें जो विचार-संकल्प करें; उसीको वाणीसे भी व्यक्त करें और तदनुसार ही शरीरसे भी कार्य करें तो यह मन, वचन और शरीरके कर्मोंका सामञ्जस्य है। जो इस प्रकार कर्म करते हैं वे निसंदेह महात्मा हैं। जो इसके विपरीत काम करते हैं यानी मनमें कुछ दूसरा ही विचार किया और वाणीसे जब व्यक्त करना हुआ तो कुछ दूसरी ही बात कही और शरीरके द्वारा जो काम किया वह कुछ अन्य ही किया। इस प्रकार मन-वचन और कायामें एकता नहीं रही। जो लोग ऐसे कार्य करते हैं, उन्हें दुरात्माकी संज्ञा दी गयी है। शास्त्रवचन हैं—

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्॥

इसलिये सत्कर्मोंके सम्पादनके लिये इन तीनोंमें सामञ्जस्यता स्थापित करनी चाहिये। इसीको दूसरे शब्दोंमें हम 'सदाचार' कहते हैं। सदाचारकी जीवनमें बड़ी आवश्यकता है। सदाचारके बिना न इस लोकमें सुख है, न परलोकमें। मनमें सदा शुभ विचार तथा शुभचिन्तन हों, इसके लिये भगवान्‌का सतत स्मरण करना चाहिये। वाणी मधुर और विनयशील होनी चाहिये और सत्य बोलनेका ही अभ्यास करना चाहिये। प्रत्येक व्यक्तिको यहाँ जो ममताने घेर रक्खा है, उससे छूटनेके लिये मनमें इस भावका बराबर स्मरण रखना चाहिये कि 'संसार हमसे प्रतिदिन छूटा जा रहा है और एक दिन वह समय आ ही जायगा, जब हमें सब कुछ छोड़कर यहाँसे कूच कर ही जाना पड़ेगा।' संसारकी सारी चीजें नश्वर हैं और एक परमात्मा ही अखण्ड, एकरस और सदा रहनेवाला है। इसलिये उसको सदा स्मरण करते हुए निम्न प्रकार नमस्कार करना चाहिये—

ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

प्रार्थना

'विपदा है करुणाभा, दुःख तुम्हारा है प्रभु ! आशीर्वाद।
है प्रतिकूल परिस्थिति जगकी सुखपरिणामी बिना विवाद'॥
यह अनुभूति कृपा दो हे प्रभु ! जाग्रत् कर दो यह विश्वास।
लगा रहे मन नित्य तुम्हारे चरणोंमें कल्याण-निवास॥
सब कुछ भूल नित्य तुमसे प्रभु ! जुड़ा रहे जीवन निर्बाध।
तृप्त रहूँ मैं नित्ययुक्त हो, रहे न कोई भी मन साध॥
रहूँ देखता हर हालतमें सदा तुम्हारी मुख-मुसकान।
स्मरण बने जीवनका जीवन एक तुम्हारा ही हो ध्यान॥

ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

[मायासे तरनेका सरल उपाय—ईश्वर-भक्ति]

(एक पुराने प्रवचनके आधारपर लिखित)

प्रश्न—श्रद्धा करना चाहते हैं, फिर होती क्यों नहीं ?

उत्तर—न होनेमें मूर्खता ही हेतु है।

प्रश्न—मूर्खता कैसे दूर हो ?

उत्तर—भगवान्‌से प्रार्थना करे, नाम-जप करे और सत्संग करे। मुझपर जब-जब कामका आक्रमण हुआ तब-तब मैंने 'हे नाथ ! हे नाथ !!' यों पुकार लगायी, तो तुरंत ही कामका असर दूर हो गया। रातमें एक भाईने पूछा था कि हमपर काम-क्रोधका बहुत आक्रमण होता है, क्या करें। तो हमने यही उत्तर दिया कि 'भगवान्‌से प्रार्थना करो।' काम, क्रोध, लोभ—तीनोंका आक्रमण होता है तो शास्त्रोंमें इसके लिये बहुत-से उपाय बताये गये हैं। नामजप तथा विचारसे भी इन दोषोंका नाश होता है। कोई भी उपाय न चले तो भगवान्‌से प्रार्थना करे—'हे नाथ ! हे नाथ !! बचाओ ! काम, क्रोध, लोभ—ये तीन शत्रु आक्रमण कर रहे हैं।' ऐसी परिस्थितिमें भगवान्‌की शरण ही उपाय है। अर्जुनने जैसे भावसे प्रार्थना की थी उसी तरह भावसे प्रार्थना करनी चाहिये। भाव न हो तो वाणीसे बोल-बोलकर उनकी नकल ही करे।

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः॥
(गीता ११। ३६)

'हे अन्तर्यामिन् ! यह योग्य ही है कि आपके नाम, गुण और प्रभावके कीर्तनसे जगत् अति हर्षित हो रहा है और अनुरागको भी प्राप्त हो रहा है तथा भयभीत राक्षसलोग दिशाओंमें भाग रहे हैं और सब सिद्धगणोंके समुदाय नमस्कार कर रहे हैं।'

दसवें अध्यायमें भी उन्होंने प्रार्थना की है—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥
(गीता १०। १२)

'आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं; क्योंकि आपको सब ऋषिगण सनातन दिव्य पुरुष एवं देवोंका भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं।'

इस प्रकार स्तुति करते हुए अर्जुनने चतुर्भुजरूपके दर्शन देने तथा विभूति और योगशक्तिको कहनेके लिये प्रार्थना की थी, उसी तरह प्रार्थना करे। अथवा संतलोग जैसे स्तुति करते हैं—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

—इस तरह स्तुति करे। स्तुतिमें और प्रार्थनामें अन्तर है। भगवान्‌के गुणोंका गान स्तुति है और भगवान्‌से याचना करना प्रार्थना है। याचना ऐसी चीजोंकी करनी चाहिये—भजन-ध्यानकी, दर्शनोंकी। सांसारिक पदार्थोंकी माँग नहीं करनी चाहिये। धनकी, ऐश्वर्यकी याचना करना तो आत्मघात करने-जैसा है। सांसारिक भोग और ऐश्वर्य दीपकके समान हैं। इनकी इच्छा करना अपने-आपको पतंग बनाना है। जैसे पतंग दीपककी लौमें जलकर मर जाता है, वैसे ही ऐश्वर्यके संग्रह और भोगोंके उपभोगसे नाश (अधःपतन) ही होता है। इसलिये सांसारिक भोग और ऐश्वर्यकी कभी इच्छा ही नहीं करनी चाहिये। खूब वैराग्ययुक्त होकर विचरना चाहिये। त्रिलोकीके ऐश्वर्यको धूलके समान समझकर विचरना चाहिये। वही पुरुष आगे चलकर महात्मा हो सकता है। सांसारिक भोग तो रोग हैं।

प्रश्न—(१) हमलोग मायामें फँसे हुए हैं, इससे बचनेका क्या उपाय है ?

(२) माया क्या चीज है ? मायाका वास्तविक स्वरूप क्या है ?

उत्तर—दोनों प्रश्न एक ही हैं। आपने मायाका स्वरूप

पूछा और उससे निकलनेका उपाय पूछा। दोनों प्रश्नोंको मिलाकर उनका उत्तर कह देते हैं।

जय सीताराम सीताराम सीताराम जय सीताराम। (कीर्तन)

उत्तर कह दिया न। क्या कहा? 'सीताराम, सीताराम, सीताराम' क्या बताया! मायासे तरनेका उपाय—सीताराम, सीताराम। एक साधुके पास एक जिज्ञासु गया और बोला—'निर्गुण-निराकार परमात्माका स्वरूप बताइये।' साधुने कहा—'बताऊँगा।' और वे चुप हो गये।

फिर पूछा—'महाराज! बताइये।' कहा—'बता दिया न। हम चुप हो गये इसका मतलब है—वाणीकी वहाँ पहुँच नहीं है।' इसी प्रकार आपके प्रश्नका उत्तर हो गया। सीताराम, सीताराम करते रहो, आप ही मायासे छूट जाओगे। भगवान्‌ने बतलाया है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(गीता ७। १४)

'यह सत्त्व-रज-तम तीनों गुणमयी अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत मेरी माया है। इससे तरना बड़ा कठिन है, किंतु जो मेरी शरण आकर मेरा भजन करते हैं वे इस मायाको लाँघ जाते हैं।'

इससे हमको यह मिला कि भगवान्‌का भजन ही मायासे तरनेका सरल उपाय है। अब यह समझना चाहिये कि मायाका क्या स्वरूप है। हर एक पदार्थके तीन स्वरूप होते हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। स्थूलसे महीन सूक्ष्म है और सूक्ष्मसे महीन कारण है। एक तो मायाका स्वरूप है और एक मायाका विकार। आरम्भमें उसका स्वरूप है प्रकृति। प्रकृति अव्यक्त है। उसका कोई आकार नहीं तथा वह आरम्भमें अक्रिय है। प्रथम उस मायामें क्या होता है? सांख्य और योग तो कहते हैं कि तीनों गुणोंकी जो साम्यावस्था है उसका नाम प्रकृति है। भगवान् श्रीकृष्णजी कहते हैं कि प्रकृतिका जो आरम्भिक स्वरूप है वह असली है। तीनों गुण उस मायाके कार्य हैं। 'गुणाः प्रकृतिसम्भवाः' (गीता १४। ५)—'तीनों गुण प्रकृतिसे उत्पन्न हैं।' तथा 'विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्॥' (गीता १३। १९)—'विकार और गुण प्रकृतिसे ही उत्पन्न हुए हैं ऐसा जानो।' यह जो सारा संसार है, यह विकार है। सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण हैं। ये सभी प्रकृतिके कार्य हैं। इस प्रकार दो श्रेणी हुई—एक गुणोंकी श्रेणी और दूसरी विकारोंकी श्रेणी।

भगवान्‌ने कहा है—

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥

'इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्थूल देहका पिण्ड, चेतना, धृति—इस प्रकार विकारोंके सहित यह क्षेत्र संक्षेपमें कहा गया।'

इसलिये राग-द्वेष, हर्ष-शोक—ये विकार हैं। जितने भी पदार्थ हैं वे गुण हैं। प्रथम उस प्रकृतिसे सत्त्व-रज-तमकी उत्पत्ति हुई। इसके बाद अन्य पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई। पहले सत्त्व—बुद्धितत्त्वकी उत्पत्ति हुई। उसके बाद बुद्धिके ही भेद हुए—अहंकार, मन आदि। उसके पश्चात् इन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई। इसके अनन्तर आकाश, वायु आदि पाँच भूतोंकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार सब पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई। जो कुछ भी दीखता है, वह उस मायाका ही विस्तार है। प्रकृतिका जो आदिरूप है वह तो अकथनीय और बुद्धिके भी परे है। जहाँ हमलोगोंकी बुद्धि कुण्ठित हो जाती है वह माया है; क्योंकि वही बुद्धिको उत्पन्न करनेवाली है। वह अव्याकृत माया तो कारण है और वह बुद्धि उस मायाका सूक्ष्म स्वरूप है। जो कुछ हम देख रहे हैं वह उसका स्थूल स्वरूप है। वह इतने मोटे रूपमें आकर प्राप्त हो गयी। इसको लाँघना ही इससे पार होना है। इससे पार होनेका सुगम उपाय भक्ति है। जो पण्डित हैं, बुद्धिमान् हैं उनके लिये ज्ञान भी उपाय है।

माया क्या है? जैसे वृक्षकी जड़, डालें, पत्ते—सब अलग-अलग चीजें हैं, वैसे ही मायाका मोटा, पतला, सूक्ष्म रूप होता है। इस मायाकी जड़ क्या है? सबका नाश होनेपर भी जो कायम रहे वह अव्याकृत। उसका स्वरूप अकथनीय—अनिर्वचनीय है। उसका मोटा रूप है अज्ञान। अज्ञान—मोहके कई भेद हैं। निद्रा भी मोहका ही भेद है। यह तमःप्रधान है। आलस्य, मोह, मूर्च्छा, अज्ञान—ये सब एक ही जातिकी चीजें हैं। प्रकृतिके दो भेद किये जाते हैं—विद्या और अविद्या। निद्रा आदि उसका अविद्यारूपी अंश है और तमोमय है। देखनेमें वह जैसे जड है उसी तरह यह जडका मोटा हिस्सा है। विद्या इससे बढ़िया चीज है। वह भी सुख और ज्ञानकी आसक्तिसे

बाँधनेवाली तो है (गीता १४ । ६), किंतु तमोगुणकी तरह नहीं। वह विद्या किससे उत्पन्न होती है ? ज्ञानसे। ज्ञानकी जड़ क्या है ? बुद्धि। बुद्धितत्त्व क्या है ? महत्तत्त्वका अंशमात्र है। बुद्धितत्त्व सत्त्वगुणका अंश है। वह भी मायाका ही कार्य है। तथा अविद्यारूप अंश भी मायाका कार्य है, किंतु वह बुद्धिको भी मोहित करनेवाला है। बुद्धिको हम तेज करें, ज्ञानको प्रदीप्त करें तो अविद्याका नाश हो सकता है; क्योंकि वह ज्ञान है और यह अज्ञान। अविद्यारूप जड़का ही नाश हो जाय तो फिर संसाररूप वृक्ष किसके आधारपर रहे। इसीलिये महर्षि पतञ्जलिजीने कहा है—'तस्य हेतुरविद्या।' (योग० २ । २४)

'द्रष्टा पुरुष और दृश्य-प्रकृतिके संयोगका कारण 'अविद्या' है।' भगवान् कहते हैं—

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥
....।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥
(गीता १५ । २–३)

'उस संसारवृक्षकी तीनों गुणोंरूप जलके द्वारा बढ़ी हुई एवं विषय-भोगरूप कोंपलोंवाली देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएँ नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्यलोकमें कर्मोंके अनुसार बाँधनेवाली अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकोंमें व्याप्त हो रही हैं।........इसलिये इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलोंवाले संसाररूप पीपलके वृक्षको दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्रद्वारा काटकर (परमात्माके शरण होना चाहिये)।'

यह संसाररूपी वृक्ष है, यही हमारे बन्धनका हेतु है। इसे काटे। यह किससे कटे ? वैराग्यरूपी शस्त्रसे। मूल प्रकृतिके विद्या और अविद्या दो भेद हुए। विद्यारूपी अंश हमारे कल्याणमें सहायक है, अविद्यारूपी अंश बाधक है। जिसमें जितनी ही अविद्या अधिक है, उसे उतनी ही नीची योनि मिलती है। हमलोगोंमेंसे जिनको निद्रा अधिक आती है, उनमें तमोगुण अधिक है। सूर्योदयके बाद भी जो सोते रहते हैं, उनके लिये शास्त्रोंमें बताया गया है कि वे मरनेके बाद मनुष्य तो हो ही नहीं सकते, नीची गति यानी वृक्ष आदि योनिको प्राप्त होंगे या कुम्भीपाक आदि नरकमें जायँगे। जिनमें मोह और प्रमाद दोनों होते हैं, उन्हें तो भेजते हैं योनिविशेष नरकमें और जिनमें मोहकी मात्रा अधिक होती है, उन्हें वृक्ष आदि बनाते हैं। सोनेका अभ्यास किया है तो (अब वृक्षरूपमें) सोते ही रहो। जहाँ खड़े हो वहीं खड़े रहो। वृक्षोंमें कितना अज्ञान है ! इससे समझना चाहिये कि इनमें सोनेकी आदत ज्यादा है। इसीलिये कहा गया है कि ज्यादा नहीं सोना चाहिये। जितना ज्यादा सोओगे, उतनी ही नींद आयेगी, उसकी तृप्ति होती नहीं, जैसे भोगोंके भोगनेसे कभी तृप्ति नहीं होती। अब विचार करें—'भक्ति क्या है ?' भगवान्के नामका जप करना, स्मरण करना, प्रार्थना करना, स्तुति करना—ये सब भक्तिके ही अङ्ग हैं। इस संसारसे पार होनेके लिये ईश्वरकी भक्ति सबसे बढ़कर है। भगवान्का हम केवल ध्यान करें तो ध्यानसे ही परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। भगवान् कहते हैं—

तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥
(गीता १२ । ७)

'हे अर्जुन ! उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ।'

जैसे सागरमें जलके परमाणु अनन्त होते हैं, वैसे ही परमात्माकी प्राप्तिके बिना कितनी बार इसको मरना पड़ेगा इसका हिसाब नहीं। जलके कणोंका तो अन्त आ सकता है; पर इसकी तो सीमा है ही नहीं। इसलिये इसे मृत्यु-संसारसागर कहते हैं। इस त्रिगुणमयी मायाके कार्य-रूप संसारमें जीव फँसे हुए हैं। गीतामें सातवें अध्यायके चौदहवें श्लोकमें भगवान्ने यही बतलाया कि जो मेरी शरणमें आ जाता है, वह इस मायासे पार हो जाता है। अतः हमलोगोंको इससे पार होनेके लिये भगवान्के शरण होना चाहिये। स्वामी श्रीशंकराचार्यजीसे, जो वेदान्तके आचार्य थे, किसीने प्रश्न किया—'संसारसे तरनेका क्या उपाय है ?'

अपारसंसारसमुद्रमध्ये
सम्मज्जतो मे शरणं किमस्ति।
गुरो कृपालो कृपया वदैतद्
विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका॥
(प्रश्नोत्तरी १)

'हे दयामय गुरुदेव ! कृपा करके यह बतलाइये कि अपार संसाररूपी समुद्रमें मुझ डूबते हुएका आश्रय क्या है ? उन्होंने उत्तर बतलाया—'विश्वपति परमात्माके चरणकमलरूपी जहाज' । वे ही बड़ी नौका हैं । उससे ही पार हो सकते हैं । समुद्रसे पार होनेके लिये जहाजकी आवश्यकता होती है । यहाँ जहाज क्या है ? भगवान्‌के चरणोंका ध्यान । योगसूत्रमें भी बतलाया गया है—

ईश्वरप्रणिधानाद्वा । (योग० १ । २३)

'ईश्वरप्रणिधान (ईश्वरकी शरण) से भी निर्बीज समाधिकी सिद्धि शीघ्र हो सकती है ।'

ईश्वरकी शरण बड़ा सरल उपाय है । छः दर्शनशास्त्र हैं, उनमें पातञ्जल योगदर्शन एक है, उसमें यह बताया गया है । पूर्वमें बहुतसे अच्छे-अच्छे महापुरुष हुए हैं, उन्होंने भी भगवान्‌की शरणको ही अच्छा उपाय बतलाया है । भगवान्‌के शरण होना—उन्हींके भरोसे रहना, उनके किये विधानमें कभी मनको मैला न करना, सदा संतुष्ट रहना चाहिये । हम उनके विधानमें संतुष्ट रहेंगे तो भगवान् हमपर संतुष्ट रहेंगे । यही संसारसे तरनेका उपाय है । आप किसीके भी विषयमें देख लें । जो जिसके कहनेके अनुसार चलता है, वह उसे बड़ा प्यारा लगता है । मेरे कहनेके अनुसार जो चलता है, मुझे भी वह प्रिय लगता है । आप किसीके लिये कड़े-से-कड़ा विधान कर दें और वह उसे सुनकर बहुत संतुष्ट हो तो मैं समझता हूँ आपको वह प्रिय ही लगता है । इसीका नाम ईश्वरकी भक्ति है । सात-पाँचकी जरूरत नहीं । जैसे भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥
(गीता १० । ४२)

'अथवा हे अर्जुन ! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है ? मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌को अपनी योगशक्तिके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ ।'

इसी प्रकार, ईश्वरके विधानमें संतुष्ट रहना और ईश्वरकी आज्ञाका पालन करना—इसीका नाम भक्ति है । बस, इन दो बातोंको ही समझ लें, और कुछ जाननेकी जरूरत नहीं । ईश्वरका विधान क्या है ? जो कुछ सांसारिक सुख-दुःख हमें मिलता है, यह ईश्वरका किया हुआ न्याय है, उनका विधान है । इसके प्राप्त होनेपर खूब प्रसन्न रहे । जो कुछ आकर प्राप्त हो, उसे ईश्वरका भेजा हुआ पुरस्कार समझे कि अहा ! इसमें ईश्वरकी कैसी दया भरी है ! जो हमारे मनके प्रतिकूल हो, उसमें भी यही समझें कि यह ईश्वरके अनुकूल है, इसलिये हमारे भी अनुकूल है । भक्त प्रह्लादजी जो कुछ पिताका विधान होता है, उसे ईश्वरका विधान समझकर प्रसन्न होते हैं और हँसते हुए उसे स्वीकार करते हैं । इसी प्रकार हमारे मनके बिल्कुल विपरीत हो तब भी हम यही समझें कि हमारे लिये यही ईश्वरका विधान है और हमारे लिये यही मङ्गलकारक है । यह तो है विधान । दूसरी होती है विधि । विधान और विधि दो हैं । विधि क्या है ? ईश्वरकी आज्ञा । ईश्वरने विधि बतला दी कि 'सत्यं वद, धर्मं चर ।'—'सत्य बोलो, धर्मका पालन करो ।' तथा ईश्वरने स्वयं आज्ञा दी कि—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
(गीता १८ । ६५)

'हे अर्जुन ! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर । ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है ।'

यह केवल अर्जुनके प्रति ही आज्ञा नहीं है, हम सभीके लिये है । इस प्रकार ईश्वरकी आज्ञा मानकर हमलोग ईश्वरके ही नामका जप करें, उनकी आज्ञाका ही पालन करें, उन्हें ही नमस्कार करें । नवीन क्रिया जो कुछ हम करें वह तो ईश्वरकी आज्ञा हो वही करें और ईश्वरका सदा स्मरण रखें, यह तो मूल सिद्धान्त है । भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥
(८ । ७)

'इसलिये हे अर्जुन ! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर । इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसंदेह मुझको ही प्राप्त होगा ।'

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥
(१० । ९)

'निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही

प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं।'

> चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
> बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥
> (१८।५७)

'सब कर्मोंको मनसे मुझमें अर्पण करके तथा समबुद्धि-रूप योगको अवलम्बन करके मेरे परायण और निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो।'

भगवान्‌ने पहले यही बात कही है कि हर समय मुझमें चित्त रक्खो। अतएव हमलोग ईश्वरको निरन्तर याद रखते हुए उनकी आज्ञासे कभी बाहर न हों और ईश्वरके किये हुए कार्य (विधान) से बहुत प्रसन्न रहें। हमारे लिये फाँसी भी हो तो उसे हँसते-हँसते स्वीकार करें कि अहा! ईश्वरका हमारे लिये यही मङ्गलमय विधान है। यदि पुत्र पिताको ईश्वर मानकर पिताके विधानमें संतुष्ट रहे और पिताकी आज्ञाका पालन करे तो इससे उसका कल्याण है। इसी प्रकार स्त्रीके लिये पतिके विषयमें समझना चाहिये। वास्तवमें पतिकी आज्ञा मानना ही 'पातिव्रत-धर्म' है। शिष्यके लिये भी यही बात समझनी चाहिये। शिष्य गुरुके विधानमें संतुष्ट रहे। गुरुजीने विधान कर दिया कि एक घंटा धूपमें खड़े रहो तो बस, ठीक है। गुरुजीने दस बेंत लगवाये तो उससे प्रसन्नता हो कि गुरुजीने हमारे उद्धारके लिये ही लगवाये हैं। जब हम ईश्वरके विधानमें संतुष्ट होते हैं, तब ईश्वर हमसे अत्यन्त संतुष्ट होते हैं। इसी प्रकार ईश्वरकी आज्ञाका ईश्वरको याद रखते हुए पालन करें। यही ईश्वरकी भक्ति है। यही मायासे तरनेका अमोघ उपाय है।

वर्तमान राजनीति, देशभक्त, नेता और मानवता

पहले 'मैं', फिर 'मेरी पार्टी', फिर आता है—'मेरा देश'।
'मैं'का स्वार्थ प्रथम, द्वितीय है—'पार्टी'का, 'स्वदेश'का शेष॥
'देशभक्त' मैं सदा चाहता, हो स्वदेशका नित कल्याण।
पर 'मेरी पार्टी' को यदि मिलता हो उससे 'धन-पद-मान'॥
'पार्टी'को भी 'धन-पद' मिलना है मुझको तब ही स्वीकार।
यदि 'मैं' पाता हूँ निश्चित विशेष धन-मान पूर्ण अधिकार॥
ऐसा 'मूढ' न 'देशभक्त' मैं, कर अपना निजस्व-बलिदान।
सोचूँ जो 'पार्टी'—'स्वदेश' का हित-अधिकार-स्वार्थ-सम्मान॥
हाँ, जब बोलूँगा, तब लूँगा, पहले सदा 'देश'का नाम।
'पार्टी'का पश्चात्, न लूँगा अपना नाम कभी बेकाम॥
पर, मेरे हितके बाधक 'स्वदेशहित'को भी दूँगा त्याग।
बदलूँगा मैं 'पार्टी'को भी 'निज-हित-हेतु', न रखकर राग॥
क्योंकि वस्तुतः लक्ष्य एक है, सफल सदा करना निज स्वार्थ।
इसी एकमें हित है गौरव-मण्डित, यही परम पुरुषार्थ॥
यही तत्त्व है 'राजनीति'का 'नेताका स्वरूप' यह 'भव्य'।
श्रेय त्याग कर 'स्वार्थपरायण रहना' 'एक यही कर्तव्य'॥
'स्वार्थ-साधना' एकमात्र बस, यही मानना, रखना ध्यान।
'मानवधर्म' यही केवल है, 'मानवताका लक्ष्य' महान्॥

स्वयं भगवान् कब और क्यों आते हैं ?

(श्रीकृष्णजन्माष्टमी-महोत्सवपर श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका भाषण)

मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे
भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम् ।
अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे
भवे भवे मेऽस्तु भवत्प्रसादात् ॥
दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो
नरके वा नरकान्तक प्रकामम् ।
अवधीरितशारदारविन्दौ
चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ॥

प्रकृति स्वाभाविक अधोगामिनी है । प्रकृतिमें सहज ही सत्त्व रजोमुखी होता है और रजोगुण तमोगुणकी ओर प्रवाहित होता है । किसी समर्थ पुरुषके द्वारा यदि रुकावट नहीं होती, तो प्रकृतिकी यह निम्नगामिनी गति निर्बाध चलती रहती है और ज्यों-ज्यों वह निम्न स्तरपर पहुँचती है—त्यों-ही-त्यों अध्यात्मके स्थानपर घोर अधिभूत छाने लगता है । मानव आसुरी तथा राक्षसी भावापन्न हो जाता है । उसमें अहंता-ममता, कामना-वासना, स्पृहा-आसक्ति बुरी तरहसे बढ़ने लगती है । चोरी, डकैती, लूट, हिंसा, छल, ठगी—किसी भी उपायसे हो, वह भोग (अर्थ, अधिकार, पद, मान, शरीरका आराम आदि) प्राप्त करनेमें ही तत्पर हो जाता है । धर्म, सत्य, न्यायको कोई स्थान नहीं रह जाता । राजाओं और शासकोंके रूपमें सर्वथा अनीतिपरायण, स्वेच्छाचारी, असदाग्रही, नीच स्वार्थरत असुरोंका आधिपत्य हो जाता है । पवित्र प्रेमके नामपर नीच कामकी उद्दाम क्रीड़ा होने लगती है । कुलवधुएँ कुलटा होनेमें गौरवका अनुभव करती हैं । ईश्वर तथा धर्मका एवं साधक तथा साधनाका प्रबल विरोध होता है । ईश्वरको माननेवाले साधुचरित्र पुरुषोंपर अत्याचार होने लगते हैं । सच्चे परमार्थ-साधकोंको लाञ्छित, अपमानित होकर पद-पदपर विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ता है । वे छिपकर भी अपनी साधना नहीं कर सकते । मनुष्योंमें विपरीत-दर्शिनी तामसी बुद्धि छा जाती है । वे विनाशमें विकास देखते हैं तथा सर्वथा इन्द्रिय-भोगपरायण होकर मानवताके नामपर दानवताके कुत्सित, क्रूर कर्म करने लगते हैं । इस प्रकार भौतिक बलशाली दुर्वृत्तों, दुराचारियों या दुष्कर्मोंके अनर्गल अनाचार तथा दारुण अत्याचार एवं साधुहृदय मानवोंकी करुण पुकार जब चरम सीमापर पहुँच जाती है तब भगवान्‌का अवतार हुआ करता है । विशेषतः स्वयं भगवान्‌का तो भूतलपर तभी अवतरण होता है, जब यहाँ ऐसे दुष्कृतोंका वध आवश्यक होता है जिनको भगवान्‌के हाथों देहमुक्त होकर भगवद्धाममें जाना हो और उन साधुपुरुषोंकी मर्मपीड़ाको हरण करना अनिवार्य हो जाय, जो काम-कलुषित विषयजगत्‌से अत्यन्त पीड़ित होकर विशुद्ध प्रेम चाहते हों और अपने परम प्रेमास्पदकी विरह-ज्वालासे अत्यन्त संतप्त हो उठे हों ।

यह सभी जानते हैं कि कंसके राज्यमें देश नितान्त दुर्दशाग्रस्त हो गया था । प्रकृति इतने नीचे स्तरपर आ गयी थी कि उसमें जडता, नास्तिकता, असत्य, अधर्म, अन्याय, अत्याचार, अनाचार और व्यभिचारका ताण्डव नृत्य होने लगा था । कंसने भगवान्‌के पूर्वजन्मके पिता-माता वसुदेव-देवकीके हाथों-पैरोंमें लोहेकी हथकड़ी-बेड़ी पहनाकर उन्हें कारागारमें बंद करके तो अत्याचारकी पराकाष्ठा ही कर दी थी !

कंस पूर्ण तमोगुणसे आच्छादित था, पर बुरे लोग भी कभी-कभी प्रशंसा आदि पानेके लिये सत्कर्ममें प्रवृत्त हो जाते हैं, इसीके अनुसार क्रूरहृदय कंस देवकी-वसुदेवका विवाह हो जानेपर उन्हें पहुँचानेके लिये स्वयं रथ चलाकर ले जा रहा था, पर ज्यों ही उसने आकाशवाणी सुनी कि स्वार्थमें आघात लगनेकी आशङ्कासे वह तिलमिला उठा और तलवार निकालकर बहिन देवकीका वध करनेको तैयार हो गया !

वसुदेवजीके बहुत समझानेपर माना, पर आखिर उनको कारागारमें बंद कर ही दिया। फिर तो उसने दुर्दान्त असुरमण्डलीसे परामर्श करके भाँति-भाँतिके भीषण अत्याचार आरम्भ कर दिये। अवनी देवी उसके अत्याचारोंसे अकुला उठी और गौके रूपमें करुण चीत्कार करती हुई ब्रह्माजीके पास पहुँची। ब्रह्माजी भगवान् शिव तथा सुर-समूहको साथ लेकर क्षीरसागरके तटपर गये और क्षीराब्धिशायी भगवान्का स्तवन करने लगे। तब क्षीराब्धिशायी भगवान्ने आकाशवाणीमें कहा—

'देवताओ! मैंने भगवान्की आकाशवाणी सुनी है, उसे तुमलोग मेरे द्वारा सुनो और अविलम्ब उसके अनुसार कार्य करो। हमलोगोंकी प्रार्थनाके पूर्व ही धरादेवीके संतापको भगवान् जान चुके हैं। वे ईश्वरोंके ईश्वर अपनी कालशक्तिके द्वारा धरतीका भार उतारनेके लिये जबतक धरातलपर लीला करें, तबतक तुमलोग भी यदुवंशमें जन्म लेकर उनकी लीलामें योगदान करो। वे परम पुरुष भगवान् स्वयं वसुदेवजीके घरमें प्रकट होंगे। उनकी तथा उनकी प्रियतमा (श्रीराधाजी) की सेवाके लिये देवाङ्गनाएँ भी वहाँ जन्म धारण करें।'

इससे क्षीराब्धिशायी भगवान्ने यह स्पष्ट कर दिया कि असुरवध, साधुरक्षण तथा धर्मसंस्थापनके लिये इस बार 'साक्षात् परम पुरुष भगवान्' स्वयं प्रकट होंगे।

इधर भगवान्के लीलासंकेतसे गोलोकमें एक ऐसा लीलाकारण बन गया कि जिससे श्रीराधाजीके धरातलपर अवतीर्ण होनेका प्रसंग आ गया। उन्हींके साथ गोलोकके अन्यान्य पार्षदों, देवियों तथा चिन्मय लीला-उपकरणोंका भी अवतरण हो गया। उधर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि-तापस, वेदकी ऋचाएँ, ब्रह्मविद्या आदि भी तपःसिद्ध होकर प्रेम-रसमय स्वयं भगवान्का प्रेमरसास्वादन करनेके लिये व्रजके गोपगृहोंमें अवतीर्ण होकर आतुर प्रतीक्षा करने लगे। उन प्रेमी भक्तोंकी विरह-पीड़ा पल-पल बड़ी शीघ्रगतिसे असीमताकी ओर अग्रसर होने लगी। अपने परम प्रेमास्पद रसस्वरूप भगवान्का विरह उनके लिये असह्य हो गया—

एक-एक पल बना युगों-सा दारुण पीड़ाका आगार।
आँखोंमें छायी वर्षाऋतु, अविरत बही अश्रु-जल-धार॥
हुआ व्यथामय हृदय कर उठे प्राण करुणस्वर हाहाकार।
प्रियतम-विरह विषमसे सूना हुआ सहज सारा संसार॥

प्रेमी-जन-मनरञ्जन स्वयं भगवान्के पधारनेके लिये यह भी एक अनिवार्य कारण बन गया। 'ब्रह्मवैवर्त्त पुराण'के अनुसार साधु-समाजकी तथा भगवद्विरही जनोंकी विभिन्न पीडाओंको तथा मानवके कामनामय अघजीवनकी धर्मग्लानिको देखकर साधु-परित्राण एवं धर्म (समाजधर्म तथा प्रेमधर्म) के संस्थापनार्थ प्रार्थना करनेके लिये पीड़िता पृथ्वीको साथ लेकर ब्रह्माजी महान् महेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके गोलोकधाममें पहुँचते हैं। उनके साथ नारायण ऋषि भी हैं। भगवान्ने पृथ्वी तथा साधुजनोंकी पीड़ा देखकर देवताओंकी प्रार्थनाके अनुसार स्वयं अवतार ग्रहण करना स्वीकार कर लिया। अवतारका आयोजन होने लगा। स्वयं भगवान् पधार रहे हैं—अतएव उनमें सभीका समावेश आवश्यक है—अतएव इसी समय शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी भगवान् महाविष्णु एक दिव्य रथपर पधारते हैं और रथसे उतरकर तुरंत महेश्वर श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें विलीन हो जाते हैं। इसी प्रकार एक दूसरे दिव्य रथपर आरूढ़ हो पृथ्वीपति भगवान् श्रीविष्णु पधारते हैं और वे भी श्रीराधिकेश्वर श्रीकृष्णमें विलीन हो जाते हैं—'**स चापि लीनस्तत्रैव राधिकेश्वरविग्रहे**'। इन पूर्णावतारमें मानुषी तत्त्वकी भी आवश्यकता थी, अतएव नारायण ऋषि भी इनमें विलीन हो जाते हैं।

परब्रह्म भगवान्के रूपान्तर भूमा पुरुष अन्तर्यामी भगवान् शुद्ध सत्त्वको आधार बनाकर समय-समयपर जो असुरसंहार, साधुसंरक्षण तथा धर्मसंस्थापन आदि

लीलाओंके लिये अंशसे प्रकट हुआ करते हैं, वे 'अंशावतार' कहलाते हैं। पर ये तो अचिन्त्यानन्त शक्ति-गुण-रस-महिमा-परिपूर्ण पूर्ण पुरुषोत्तम, ब्रह्मके भी प्रतिष्ठास्वरूप ('ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्'—गीता) परात्पर ब्रह्म किसीको भी आधार न बनाकर अपने सभी लीलास्वरूपोंकी अनन्त-अचिन्त्य-शक्ति तथा लीलावैचित्र्यको लेकर नित्य सत्य अप्राकृत सच्चिदानन्द-भगवत्-स्वरूप—दिव्य अभिन्न चिन्मय नेत्र, श्रवण एवं कर-पदादि इन्द्रिय तथा अन्तःकरणादिसे संयुक्त, परिपूर्णतम पुरुषोत्तम रूपमें प्रकट हो रहे हैं। इसीसे इसको पूर्णावतार या 'स्वयं भगवान्‌का पूर्ण आविर्भाव' कहते हैं। ये भगवान् श्रीकृष्ण अनन्त दिव्य सच्चिदानन्द सौन्दर्य-माधुर्य-ऐश्वर्यमय साक्षात् परात्पर पूर्ण ब्रह्म, सबके परमाश्रय ब्रह्मके भी परमाश्रय, सर्वरूप, सर्वमय, सर्वातीत, अप्रमेय, दिव्यानन्दमय, प्राकृतगुणरहित, नित्य भगवद्रूप-गुण-समूह-समुद्र, आपादमस्तक चिदानन्दाकार स्वयं भगवान् हैं। इनमें क्षीराब्धिशायी महाविष्णु, वैकुण्ठाधिपति महानारायण, श्वेतद्वीपाधिपति विष्णु तथा अंशावतार, पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार, कलावतार, आवेशावतार, मन्वन्तरावतार, प्राभवावतार, वैभवावतार, परावस्थावतार आदि सभीका पूर्णरूपमें समावेश तथा प्रकाश है। श्रीकृष्ण परिपूर्णतम हैं। सृष्टिमें जितने भी प्राकृत-अप्राकृत जीव हैं, श्रीकृष्ण सभीके आत्मा तथा मूलस्वरूप हैं। समस्त जीव, समस्त प्रकृति, समस्त देवता, समस्त भाव—सभीके मूल कारण तथा परमाश्रय हैं। वे षडैश्वर्यपूर्ण भगवान् हैं।

साथ ही वे सर्वगुणसम्पन्न महामानव भी हैं। यों कहना चाहिये कि मानवताकी परिपूर्णतम परिणति तथा भगवत्ताका परिपूर्णतम स्वरूप—दोनोंका एक साथ प्राकट्य है—भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य मानवी लीलाओंमें। वे योगेश्वरेश्वर हैं। वे तत्त्वज्ञान-विग्रह हैं। वे निष्काम कर्मयोगी हैं और वे परम-प्रेमस्वरूप हैं। वे महान् उपदेशक हैं, लोकसंग्रही समाज-श्रेष्ठ महापुरुष हैं, महान् योद्धा हैं, अनन्त कला-कुशल हैं, आदर्श राजनीतिक नेता हैं, परम रसिक हैं, सहज वैराग्यरूप हैं। वे अनन्त साधु-हृदय पुरुषोंके परमाराध्य हैं, वे भक्त-भक्तिमान् हैं। वे 'सबके सब कुछ हैं और सब कुछके सब हैं। इसलिये उनको जिसने जिस रूपमें देखा, उनके सम्बन्धमें जिसने जो कुछ कहा और उनको जिसने जो कुछ समझा—बताया वह सभी ठीक है। सम्पूर्ण विभूति, शक्ति, श्री, धी, विद्या— इन्हींमें अधिष्ठित हैं। इसीसे ये 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' हैं।

आज भाद्रपद कृष्णपक्षकी अष्टमीको अर्धरात्रिके समय इनका मङ्गल आविर्भाव होता है। आविर्भावके समयसे कुछ ही पहलेतक प्रकृतिने घोर निम्नस्तरपर पहुँचकर भीषण रूप धारण कर रक्खा था। रात्रि घोर अन्धकारसे आवृत थी, आकाश काले मेघोंसे आच्छादित था, विद्युत्‌की भीषण चमक तथा वज्रध्वनिसे सभी जीव भयभीत थे। कंसके कठोर कारागारमें परम साधु-स्वभाव वसुदेव-देवकी लौहशृङ्खलासे आबद्ध थे। इसी बीच स्वयं भगवान्‌के अवतीर्ण होनेका शुभ समय आता है। तुरंत समस्त विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

परमहंसशिरोमणि श्रीशुकदेवजीकी भाषामें "काल समस्त शुभगुणोंसे सम्पन्न और परम शोभन हो जाता है। चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रपर स्थित हैं और आकाशके समस्त ग्रह-नक्षत्र-तारे शान्त तथा सौम्य हो जाते हैं। दिशाएँ निर्मल—प्रसन्न हो गयी हैं। आकाशमें तारे चमकने लगे हैं। नदियोंका जल निर्मल हो गया है। रात्रिके समय भी सरोवरोंमें कमल खिल उठे हैं। वनोंमें वृक्षसमूह सुगन्धित पुष्पोंसे लद गये हैं। पक्षी मधुर गान करने लगे हैं। भ्रमरोंकी गुंजारसे वनभूमि मुखरित हो उठी है। पवित्र शीतल-मन्द-सुगन्ध सुख-स्पर्श वायु बहने लगी है। द्विजोंके हवन-कुण्डोंकी बुझी आग फिर

जल उठी है। असुरद्रोही साधुओंका चित्त प्रसन्नतासे भर गया है, अजन्मा भगवान्‌की इस जन्मलीलाके समय स्वर्गमें देवताओंकी दुंदुभियाँ मध्यरात्रिकालमें बिना ही बजाये बज उठी हैं। गन्धर्व-किन्नर भगवान्‌का गुणगान करने लगे हैं। सिद्ध-चारगगण स्तवन करने लगे हैं। विद्याधरियाँ नृत्य करने लगी हैं। देवता और मुनिगण आनन्दपूर्ण हृदयसे पृथ्वीके सौभाग्यकी सराहना करने लगते हैं। समुद्रोंमें मधुर तरंगें उछलने लगी हैं और मेघसमूह मृदु-मधुर गर्जना करने लगे हैं।"

इस प्रकार सारी प्रकृति सहसा निम्न स्तरसे ऊर्ध्वगति प्राप्तकर ऊर्ध्वमें सुसज्जित हो–स्थित हो अपने स्वामी पूर्णतम भगवान्‌की स्वागत-सेवामें लग गयी है। इसी समय सच्चिदानन्दविग्रह भगवान् जनार्दन 'देवरूपिणी' देवकीसे वैसे ही प्रकट हो जाते हैं, जैसे पूर्व दिशामें षोडशकला-परिपूर्ण चन्द्रमाका उदय हुआ हो। भगवान्‌के प्रकट होते ही अन्धकारमय कारागार दिव्य ज्योतिसे जगमगा उठता है। वसुदेव-देवकीकी हथकड़ी-बेड़ियाँ अपने-आप खुल जाती हैं। उनके समस्त बन्धन सदाके लिये खुल जाते हैं। असुरताके रक्षक पहरेदार सहसा निद्रामग्न हो जाते हैं। सर्वत्र सहज परमानन्द छा जाता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि विशाल विपुल भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न, इन्द्रिय-सुखकर सहस्र-सहस्र विषयोंसे भरपूर, सेवक-सेविका-समाकुल, स्वर्णरत्नमय-राजप्रासादोंमें, जो पापप्रसारी और दुःखपरिणामी हैं,—सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र निवासकी अपेक्षा सर्वभोगविवर्जित, वस्तुमात्रविरहित, समस्त संकष्ट-समन्वित एकान्त कारागारमें अवरुद्ध रहना कहीं परम श्रेयस्कर है, जहाँ नित्य-निरन्तर भगवान्‌की मधुर स्मृति होती रहती है और जहाँसे विश्वकल्याणकर भगवान्‌का मङ्गल आविर्भाव होता है। वरं वे भोगमय स्वर्णरत्न-राजप्रासाद तो सर्वथा हेय तथा त्याज्य हैं, जो कंसकी कलुषित काया तथा कालिमामयी भोगैश्वर्य-राशिकी भाँति ध्वंस होनेवाले हैं।

भगवान्‌की लीलाके प्रधान तीन स्वरूप हैं—ऐश्वर्य-लीला, ऐश्वर्य-माधुर्य-मिश्रित लीला और विशुद्ध माधुर्य लीला। वसुदेव-देवकी ऐश्वर्य-माधुर्य-मिश्रित भावके भक्त थे। इसलिये भगवान् वहाँ ऐश्वर्यपूर्ण चतुर्भुज विष्णुस्वरूप अद्भुत बालकके रूपमें प्रकट हुए। तदनन्तर वसुदेवजीकी प्रार्थनापर वे तुरंत शिशुरूप बन गये।

परंतु उन्हें तो विशुद्ध माधुर्यमय व्रजके रागात्मिका रतिके उन विभिन्न रस-सम्पन्न विरहपीड़ित प्रेमीजनोंके समीप शीघ्र पहुँचना था। इसलिये वसुदेवजीको प्रेरणा करके भगवान् वहाँसे चल दिये।

भगवान्‌का अप्राकृत परम प्रेम जितना विशुद्ध त्यागमय माधुर्य-जगत्‌में प्रकाशित तथा पुष्ट होता है, उतना कामना-वासना, आसक्ति-गन्धलेशयुक्त ऐश्वर्य-जगत्‌में नहीं। इसके सिवा ऐश्वर्यमें विविध प्रकारकी मर्यादाओं तथा सीमाओंकी बाधा रहती है, जिसके कारण प्रेमका पूर्ण प्रकाश नहीं हो पाता। माधुर्य बाधाशून्य स्वाधीन तथा असीम है। भगवान् श्रीकृष्णको इसीसे माधुर्य विशेष प्रिय है। इसीसे वे वसुदेवजीके द्वारा तुरंत माधुर्यके राज्य नन्दालयमें चले जाते हैं।

श्रीवसुदेवजी जब शिशुरूप श्रीकृष्णको लेकर चले, तब कारागारके सारे लौहद्वार अपने आप खुल गये। प्रहरी तो सब सोये हुए थे ही। यमुनाजी बढ़ रही थीं, वे भगवान्‌के चरणस्पर्श करना चाहती थीं। स्पर्श प्राप्त करके शान्त हो गयीं और उन्होंने श्रीवसुदेवजीको घुटनेतकके जलका मार्ग दे दिया। वसुदेवजी निर्विघ्न नन्दालयमें पहुँच गये। वहाँ भी भगवान्‌की लीलासे सब सोये हुए ही थे। यशोदा मैया भी निद्राग्रस्त थी। भगवती विष्णुमाया शिशुबालिकाके रूपमें प्रकट हो गयी थी।

वसुदेवजीने चुपकेसे जाकर शिशु श्रीकृष्णको वहाँ सुला दिया और देवी योगमायाको लेकर वे तुरंत लौट आये। शिशु भगवान् श्रीकृष्णको ले जाने, यशोदाके पास सुलाने और कन्याको लेकर लौट आनेकी घटनाको भगवान्की लीलासे किसीने नहीं जाना। वसुदेवजीके कारागारसे बाहर निकलते समय योगमायाके प्रभावसे जो सारे लौहद्वार तथा उनके ताले खुल गये थे, वे उनके लौटकर कारागारमें आते ही सब पुनः बंद हो गये।

वसुदेवजीके लौट जानेके बाद नन्दालयमें लोग जागे। यशोदा मैया जागीं। नन्दबाबाको मङ्गल-समाचार भेजा गया। सब ओर आनन्द छा गया। महामना नन्दजीको आत्मज (पुत्र) उत्पन्न होनेपर परम आह्लाद हुआ —

'नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः।'
(श्रीमद्भागवत १० । ५ । १)

उन्होंने महान् महोत्सव मनाया। बड़े दान-पुण्य किये गये। इस 'आत्मज' शब्दके कारण कुछ महानुभावोंने ऐसा माना है कि जिस समय कंसके कारागारमें भगवान् चतुर्भुज रूपमें प्रकट हुए थे, उसी समय नन्दालयमें द्विभुज यशोदानन्दनके रूपमें भी प्रकट हुए थे। कहते हैं कि वसुदेवजीके द्वारा लाये हुए शिशु यशोदाके लालामें ही विलीन हो गये थे। इस सम्बन्धमें पिछले सालोंके भाषणोंमें विशेष रूपसे कहा जा चुका है। वास्तवमें ऐसा हुआ भी हो तो सर्वसमर्थ भगवान्के लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। वे नन्दालयमें प्रकट हुए थे या नहीं, इसका तो पता नहीं, परंतु उनके प्राकट्यका मङ्गल-महोत्सव मनाकर अतुल आनन्द प्राप्त करनेका सौभाग्य तो श्रीनन्द-यशोदा और व्रजवासियोंको ही मिला। इसलिये वे धन्य हैं।

वस्तुतः जहाँ मधुर रागात्मिका प्रीति है, वहीं सीमामुक्त स्वच्छन्द आनन्द-समुद्र उमड़ता है। नन्दालयमें वही समुद्र उमड़ा। आज हमलोग भी धन्य हैं जो उस महान् आनन्द-महोत्सवकी स्मृतिमें आनन्द मनानेका सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं।

आजकी यह भाद्र कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथि वही पुण्यप्रद दिवस है, जिस दिन स्वयं भगवान्का मङ्गल प्राकट्य इस धराधामपर हुआ था। भगवान् श्रीकृष्णकी, उनकी लीलाकी, उनके स्वरूपकी, उनकी सौन्दर्य-माधुर्य-ऐश्वर्यकी स्मृति दिलानेवाला यह मङ्गलमय दिवस, यह मध्यरात्रिकी बेला सभी वन्दनीय हैं। भगवान् श्रीकृष्ण हमारे तमसाच्छन्न हृदयोंको अपनी सहज कृपाज्योतिके द्वारा उद्भासित करें, जिससे हमारे जीवनमें उनका दिव्य प्रकाश हो और जीवन उनके चरणोंमें समर्पित होकर धन्य हो जाय!

प्रकट हुए थे धराधाममें पूर्ण परात्पर श्रीभगवान।
परम दिव्य ऐश्वर्य-निकेतन, सुन्दरता-मधुरता-निधान॥
दुष्टोंको निज धाम भेजकर, साधुजनोंका कर उद्धार।
किया धर्मका संस्थापन था, लेकर स्वयं दिव्य अवतार॥
वही पुण्य तिथि भाद्र अष्टमी कृष्णपक्ष मङ्गलमय आज।
सुरभित श्रद्धा-सुमन-राशिसे सभी सजाकर मङ्गल साज॥
नन्दालयमें आज महोत्सव वही हो रहा मधुर विशाल।
शीघ्र बुझा देगा जो भव-दावानल सहसा अति विकराल॥
हम भी सब मिल आज मनावें वही महोत्सव मङ्गलरूप।
भोगासक्ति-विनाशक, भव-बाधाहर, दायक प्रेम अनूप॥
प्रेम कृष्णका, प्रेम कृष्णमें, स्वयं कृष्ण हीं निर्मल प्रेम।
हमें मिले, बस, एक मात्र वह, वही हमारा योगक्षेम॥
कृष्ण-नाम-गुण गाओ अविरत, प्रेमसहित नाचो तज लाज।
बनो कृष्णभक्तोंके भक्तोंके अनुगामी सहित समाज॥
मधुर मनोहर मङ्गलमय श्रीराधामाधवका सब काल।
करते रहो स्मरण नित संतत, पल-पल होते रहो निहाल॥

नन्दके आनन्द भयो, जय कन्हैयालालकी!

श्रीबगलामुखी देवीकी उपासना

(प्रेषक--ब्रह्मचारी श्रीपांगलानन्दजी उपनाम पं० श्रीयज्ञदत्तजी शर्मा वानप्रस्थी, वैद्य)

[गताङ्क पृष्ठ १११४ से आगे]

तदनन्तर पश्चिम, दक्षिण, पूर्व एवं उत्तरके क्रमसे चार समुद्रोंका चिन्तन करे । यथा—

ॐ इम् इक्षुरससमुद्राय नमः (पश्चिमे) ।
ॐ मं मदिरासमुद्राय नमः (दक्षिणे) ।
ॐ घं घृतसमुद्राय नमः (पूर्वे) ।
ॐ दुं दुग्धसमुद्राय नमः (उत्तरे) ।

इसके बाद पुनः पश्चिम दिशा आदिमें पूर्ववत् विलोम-क्रमसे रत्नोंका चिन्तन करे । यथा—

ॐ रं रत्नद्वीपाय नमः (पश्चिमे)
ॐ पुं पुष्परागरत्नाय नमः (नैर्ऋत्ये)
ॐ नीं नीलरत्नाय नमः (दक्षिणे)
ॐ कं खं गं घं ङं वं वैडूर्यरत्नाय नमः (आग्नेये)
ॐ चं छं जं झं ञं विं विद्रुमरत्नाय नमः (पूर्वे)
ॐ टं ठं डं ढं णं मौं मौक्तिकरत्नाय नमः (ईशाने)
ॐ तं थं दं धं नं मं मरकतरत्नाय नमः (उत्तरे)
ॐ पं फं बं भं मं वं वज्ररत्नाय नमः (वायव्ये)
ॐ यं रं लं वं गों गोमेदरत्नाय नमः (मध्यखण्डे)
ॐ शं षं सं हं पं पद्मरत्नाय नमः (तन्मध्ये)
ॐ स्वं स्वर्णपर्वताय नमः (तदुपरिभागे)
ॐ नं नन्दनोद्यानाय नमः (तन्मध्ये)
ॐ कं कल्पवृक्षेभ्यो नमः (तन्मध्ये)
ॐ वं वसन्तादिषड्ऋतुभ्यो नमः (तन्मध्ये)
ॐ विं विचित्रभूरत्नभूमिकायै नमः (तन्मध्ये)

इस प्रकार 'विचित्र भूरत्नभूमि'का चिन्तन करके उसके ऊपर मणिमण्डपकी भावना करे । यथा—

ॐ मं मणिमण्डपाय नमः ।

इसके बाद उस मणिमण्डपके चारों ओर नवरत्नमय हेमप्राकार (सोनेकी बनी चहारदीवारी) का चिन्तन करे । यथा—

ॐ नं नवरत्नमयहेमप्राकाराय नमः ।

तत्पश्चात् वामावर्तक क्रमसे नैर्ऋत्य आदि चार कोणोंमें निम्नाङ्कित शक्तिद्वयका चिन्तन करे । यथा—

ॐ कां कालरूपिण्यै शक्त्यै नमः ।
ॐ दें देशरूपिण्यै शक्त्यै नमः ।

इसके बाद मध्यभागमें 'ॐ समस्तसिद्धयोगिनीरूपाभ्यो नमः ।' यह वाक्य पढ़कर सिद्धयोगिनीरूपा शक्तियोंका चिन्तन करनेके पश्चात् उनके मध्यभागमें मणिमय वेदिकाकी भावना करे । यथा—

ॐ मं मणिमयवेदिकायै नमः ।

फिर उस वेदिकाके ऊपर रत्नमय सिंहासनका चिन्तन करे ।

ॐ पं पञ्चभेदरत्नमयसिंहासनाय नमः ।

इस मन्त्रका उच्चारण करके हृदयका स्पर्श करे ।

तदनन्तर दाहिने कंधेपर 'ॐ धं धर्माय नमः' इस मन्त्रसे धर्मका न्यास करे । फिर बायें कंधेपर 'ॐ ज्ञां ज्ञानाय नमः' इस मन्त्रसे ज्ञानका न्यास करना चाहिये । तत्पश्चात् 'ॐ वं वैराग्याय नमः' इस मन्त्रसे वाम ऊरुपर वैराग्यका, 'ॐ ऐं ऐश्वर्याय नमः' इस मन्त्रसे दक्षिण ऊरुपर ऐश्वर्यका, 'ॐ अम् अधर्माय नमः' इस मन्त्रसे मुखमें अधर्मका, 'ॐ अम् अज्ञानाय नमः' इस मन्त्रसे वाम पार्श्वमें अज्ञानका, 'ॐअम् अवैराग्याय नमः' इस मन्त्रसे अवैराग्यका नाभिमेंतथा 'ॐ अम् अनैश्वर्याय नमः' इस मन्त्रसे अनैश्वर्यका दक्षिण पार्श्वमें चिन्तन एवं न्यास करे ।

इसके बाद पुनः हृदयमें चिन्तन करे ।

'ॐ अम् अनन्ताय नमः ।' 'ॐ पं पद्माय नमः ।' 'ॐ आम् आनन्दकंदाय नमः ।' 'ॐ सं संविन्नालाय नमः ।' 'ॐ प्रं प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः ।' 'ॐ विं विकारमयकेशरेभ्यो नमः ।' 'ॐ पं पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यसर्वतत्त्वस्वरूपिण्यै कर्णिकायै नमः ।'

इस प्रकार कर्णिकाका चिन्तन करके उसके भीतर सूर्यमण्डल, सोममण्डल एवं वह्निमण्डलका चिन्तन एवं न्यास करे । यथा—

ॐ द्वादशकलात्मने अर्कमण्डलाय नमः ।
ॐ षोडशकलात्मने सोममण्डलाय नमः ।

ॐ दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नमः । इति ।

—इस प्रकार न्यास करनेके अनन्तर पुनः कर्णिकामें ही सत्त्व आदिका चिन्तन एवं न्यास करे । यथा—

ॐ सं प्रबोधात्मने सत्त्वाय नमः । ॐ रं प्रकृत्यात्मने रजसे नमः । ॐ तं मोहात्मने तमसे नमः । ॐ आम् आत्मने नमः । ॐ अम् अन्तरात्मने नमः । ॐ पं परमात्मने नमः । ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ॥ इति ॥

तत्पश्चात् कर्णिकाके चारों ओर और मध्यभागमें ज्ञान-तत्त्वात्मा आदिका क्रमशः चिन्तन करे । यथा—

ॐ ज्ञां ज्ञानतत्त्वात्मने नमः । ॐ मां मायातत्त्वात्मने नमः । ॐ कं कलातत्त्वात्मने नमः । ॐ विं विद्यातत्त्वात्मने नमः । ॐ पं परतत्त्वात्मने नमः ॥ इति ॥

इसके बाद आठ दिशाओंमें अपने अग्रवर्ती पूर्वदिशासे आरम्भ करके दक्षिणावर्तक्रमसे जया आदि आठ शक्तियोंका चिन्तन एवं न्यास करे । यथा—

ॐ जं जयायै नमः । ॐ विं विजयायै नमः । ॐ अम् अजितायै नमः । ॐ अम् अपराजितायै नमः । ॐ निं नित्यायै नमः । ॐ विं विलासिन्यै नमः । ॐ दों दोग्ध्र्यै नमः । ॐ अम् अघोरायै नमः ॥ इति ॥

इसके बाद मध्यभागमें "ॐ मं मङ्गलायै नमः" इस मन्त्रसे मङ्गलाका न्यास करके "ॐ ह्रीं सर्वशक्तिकमला-सनाय नमः" इस मन्त्रसे कमलमय आसनकी भावना करे ।

इस प्रकार योगपीठन्यास सम्पन्न करके तान्त्रिक पद्धति-के अनुसार कामकलाका ध्यान करे । तदनन्तर निम्नाङ्कित रूपसे देवीका ध्यान करके अन्तर्याग करे ।

ध्यान

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां
सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम् ।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं
देवीं भजामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥ १ ॥
जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं
वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम् ।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन
पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि ॥ २ ॥

सुधासमुद्रके मध्यभागमें एक मणिमय मण्डप है । उस मण्डपमें रत्नमयी वेदी है । उस वेदीपर स्वर्णमय सिंहासन सुशोभित है । उस सिंहासनपर देवी बगलामुखी विराजमान हैं । उनकी अङ्गकान्ति पीले रंगकी है । उनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग रेशमी पीताम्बर, पीले रंगके आभूषण तथा पीत पुष्पोंकी मालाओंसे अलंकृत है । देवीके एक हाथमें मुद्गर और दूसरेमें शत्रुकी जिह्वा है । ऐसी भक्तवत्सला देवीका मैं भजन करता हूँ ॥ १ ॥

देवी अपने बायें हाथसे शत्रुओंकी जिह्वाका अग्रभाग पकड़कर दाहिने हाथकी गदाके प्रहारसे उन्हें पीड़ित कर रही हैं । ऐसी पीताम्बरधारिणी तथा दो भुजाओंसे सुशोभित बगलामुखी देवीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

इस प्रकार ध्यान करके मानसिक पूजा करे । तदनन्तर अन्तर्याग करना चाहिये ।

अन्तर्याग

अन्तर्यागमें पहले स्नान प्राणायामपूर्वक श्रीगुरुका ध्यान करके गुरुपादुकाको प्रणाम करे । तत्पश्चात् हृदय नामक विमलतीर्थ पुष्कर या बिन्दुसरतीर्थ-में स्नान करे । ऐसा करनेवालेका फिर संसारमें जन्म नहीं होता, जैसा कि विमलेश्वर-तन्त्रमें कहा गया है—

स्नायाच्च विमले तीर्थे पुष्करे हृदयाह्वये ।
बिन्दुतीर्थेऽथवा स्नायात् पुनर्जन्म न विद्यते ॥

शिवतीर्थ-स्वरूप इस शरीरमें ज्ञानरूपी जलसे परिपूर्ण इडा और सुषुम्णा नामक दो नाड़ियाँ या नदियाँ बहती हैं । जो सदा इनके ब्रह्ममय जलसे स्नान करता है, उसके लिये गङ्गा और पुष्करतीर्थके जलकी क्या आवश्यकता है—

इडासुषुम्णे शिवतीर्थकेऽस्मिन्
ज्ञानाम्बुपूर्णे वहतः शरीरे ।
ब्रह्माम्बुभिः स्नाति यतः सदा यः
किं तस्य गाङ्गैरपि पौष्करैर्वा ॥

संध्योपासना

शिवशक्त्योः समावेशो यस्मिन् काले प्रजायते ।
सा संध्या कुलनिष्ठानां समाधिस्थैः प्रतीयते ॥

जिस समय शिव तथा शक्तिका ध्यानमें समावेश—संयोग होता है, वही कुलाचारनिष्ठ कौलोंकी संध्या है । जब साधक समाधिनिष्ठ होते हैं, तभी उन्हें उक्त संध्याकी प्रतीति या अनुभूति होती है ।

तर्पण

मूलाधार चक्रसे सोम-सूर्याग्निरूपिणी कुलकुण्डलिनीको उठाकर सहस्रारचक्रगत परविन्दुका भेदन करके उससे झरते हुए अमृतके द्वारा देह-देवता (कुण्डलिनी)को तृप्त करे, जैसा कि कहा गया है—

चन्द्रार्कानलसंघट्टाद्गलितं यत्परामृतम्।
तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेत् परदेवताम्॥

चन्द्र, सूर्य और अग्निमय कुण्डलिनीके टकरानेसे जो परम अमृत झरता है, उस दिव्य अमृतसे ही परा देवता (कुण्डलिनी)का तर्पण करे।

अर्घ्यदान

ब्रह्मरन्ध्रसे नीचेके भागमें जो उत्तम चन्द्रमय पात्र है, उसका कलासारद्वारा पूजन करके उसीसे खेचरी (कुण्डलिनी)को तृप्त करे।

ब्रह्मरन्ध्राद्धोभागे यच्चान्द्रं पात्रमुत्तमम्।
कलासारेण सम्पूज्य तर्पयेत् तेन खेचरीम्॥

अन्तर्मातृका

मूलाधार-चक्रगत कमल चार दलोंका होता है। उसकी कान्ति अरुण है। वह 'व' से लेकर 'स' तक चार वर्णोंका आश्रय है। अर्थात् उसके चार दलोंमें क्रमशः 'व', 'श', 'ष', 'स'—ये अक्षर स्थित हैं। इसके ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र है, जो मणि और विद्युत्के समान कान्तिमान् है। वहाँ छः दलोंसे युक्त कमल खिला हुआ है और उन छः दलोंमें 'ब' से लेकर 'ल' तकके छः अक्षर अङ्कित हैं। उसके ऊपर मणिपूर चक्र है, जो रत्नोंके समान देदीप्यमान है। वहाँ दस दलोंसे युक्त कमल शोभा पाता है। उन दलोंमें क्रमशः 'ड' से लेकर 'फ' तकके अक्षर अङ्कित हैं। उसके ऊपर अनाहत चक्र है। उसकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है। वहाँ द्वादश दलोंसे युक्त विकसित कमल शोभा पाता है और उन दलोंमें 'क' से लेकर 'ठ' तकके बारह अक्षर विन्यस्त हैं। उसके ऊपर विशुद्ध चक्र है, जिसकी कान्ति धूमके समान है। वहाँ षोडश दलोंसे युक्त कमल खिला हुआ है। उन-उन दलोंमें 'अ' 'आ' इत्यादि षोडश मात्राएँ अथवा षोडश स्वर-वर्ण विलसित हैं। उसके ऊपर आज्ञाचक्र है, जहाँ दो ही दलोंका कमल खिला हुआ है। उसकी कान्ति रत्नोंके समान उद्दीप्त है। आज्ञाचक्रगत कमलके दो दलोंमें क्रमशः 'ह' और 'क्ष'—ये ही दो वर्ण अङ्कित हैं। उससे ऊपर अधोमुख सहस्रारचक्रकी स्थिति बतलायी गयी है। वहाँ सहस्रदलकमल खिला हुआ है। वह सदाशिवोंका पुर या नगर है। उसमें नित्यानन्दमयी कौलदेवी विराजमान हैं। उनका हम स्तवन करते हैं।

इस प्रकार षट्चक्रोंमें विन्यस्त क्रमसे मातृका-वर्णोंका ध्यान करना चाहिये। यही अन्तर्मातृका कहलाती है, जैसा कि यामल तन्त्रमें वर्णन किया गया है—

आधारस्तु चतुर्दलोऽरुणरुचिर्वासान्तवर्णाश्रयः
स्वाधिष्ठानमणेश्च वैद्युतनिभं बालान्तषट्पत्रकम्।
रत्नाभं मणिपूरकं दशदलं डाद्यं फकारान्तकं
वर्णैर्द्वादशभिस्त्वनाहतमथो हैमं कठोपान्तकम्॥
मात्राभिः परिपूरितं दलगतं धूम्रं विशुद्धाख्यकं
हक्षद्वयक्षरसंयुतं युगदलं रत्नाभमाज्ञापुरम्
तस्मादूर्ध्वमधोमुखं निगदितं पद्मं सहस्रच्छदं
नित्यानन्दमयीं सदा शिवपुरे शक्तिं नुमः कौलिकीम्॥इति॥

षडङ्गन्यास

साधक अपने मन्त्रमय शरीरका चिन्तन करते हुए हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र आदिकी भावना करके अपने चारों ओर दिव्यास्त्रका चिन्तन करे तथा उसके द्वारा अपनी सुरक्षाका विश्वास दृढ़ करे।

ध्यान

सहस्रार-चक्रमें चन्द्रमण्डल है। स्वाधिष्ठान चक्रसे ऊपर सूर्यमण्डल है तथा मूलाधारसे नीचे कालाग्निमण्डल है। इस प्रकार इन तीनों तेजस्तत्त्वोंकी भावना करके उनको प्रज्वलित करे और कुण्डलिनीको परमशिवमें विलीन करे तथा तेजसे व्याप्त हुए अपने शरीरका महाशून्य परम विन्दुमें विलय करके पूर्ण निश्चल भावसे स्थित हो जाय। तदनन्तर कामकलास्वरूप आत्माका चिन्तन करके मानस पूजा करे। यह मानस पूजा ही छान्दोग्योपनिषद्के आठवें अध्यायमें दहरोपासनाके नामसे वर्णित हुई है।

मानस पूजा

अपने हृदयमें उत्तम सुधासागरका चिन्तन करे। उसके मध्यभागमें रत्नद्वीप या मणिद्वीपका भावनाद्वारा साक्षात्कार करे। वह मणिद्वीप नन्दन नामक उद्यानसे सुशोभित है। मन्त्र-साधकको चाहिये कि वह वहाँ चारों ओर मनोहर

पारिजातका चिन्तन करे । उसीमें कल्पवृक्षकी भावना करे । वह कल्पवृक्ष पचास अक्षर-रूप ही है । उसके मूलभागमें नाना प्रकारके रत्नोंसे उद्दीप्त तथा उदयकालिक सूर्यके समान तेजसे परिव्याप्त ब्रह्माण्ड-मण्डल है । उसका विस्तार सौ योजन है । वह परम उत्तम एवं ज्योतिर्मय है । उसमें प्रवेश करनेके लिये चार दरवाजे हैं तथा वह ब्रह्माण्ड सोनेकी चहारदीवारीसे सुशोभित है । बहुसंख्यक चँवर, घंटा आदि सामग्री तथा चँदोवे उसकी शोभा बढ़ाते हैं । वहाँ सदा शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु चलती रहती है । वह मण्डल सुगन्धित पुष्पोंसे अलंकृत है । उसके मध्यभागमें एक वेदी बनी हुई है, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे आबद्ध एवं सुशोभित है । वहाँ पीठके ऊपर सुवर्णसूत्ररचित उत्तम छत्र शोभा पाता है । वह छत्र बहुत ही मूल्यवान् है । उससे अमृतके कण झरते रहते हैं । इस प्रकार वेदीका चिन्तन करके पूजा प्रारम्भ करे । पहले इष्ट देवताके लिये आगत-स्वागत तथा आसनकी कल्पना करे । फिर तीन पाद्य पात्र और चार अर्घ्य पात्र प्रस्तुत करे । तीन आचमन पात्र और तीन मधुपर्क-पात्र रक्खे । हाथ धोनेके लिये दो पात्र रख ले । एक भोगपात्र भी रखना चाहिये । षोडशदल कमलमें रक्खे हुए उन पात्रोंको सहस्रार-चक्रसे झरनेवाले अमृतसे भरे । तत्पश्चात् सबसे ऊपर देवीके पश्चिम मुखारविन्दका चिन्तन करे, जिससे झरता हुआ अमृत नित्यप्रति देवीके अन्यान्य अङ्गकमलोंको सींचता रहता है । शिव-शक्तिके संयोगसे प्राप्त अमृतानन्दसे आनन्दित होनेवाली परिवारसहित ब्रह्ममयी देवीको मानसोपचारोंसे संतुष्ट करके उत्तम द्रव्य समर्पित करे । पैरोंमें पाद्य तथा हाथोंमें अर्घ्य दे । सहस्रार-चक्रगत सहस्रदल-कमलके केशररूपी कन्दराके काननसे झरे हुए परम अमृतको भावमय पुष्पोंसे सुवासित करके उसका ही पानीय (जल) के रूपमें उपयोग करे । सोनेके पात्रमें जल रखकर इष्ट देवताके मुखमें आचमन दे । मधुपर्क और आचमनीय—दोनोंका अर्पण मुखमें ही होना चाहिये । चौबीस तत्त्वरूप गन्ध अर्पित करे । सुवर्णमय पुष्प चढ़ाये । कुङ्कुम और लालचन्दनका लेप करे । पूर्वोक्त भावमय पुष्पोंसे तथा धूप-दीपसे पूजन करके मानसिक भावनाओंद्वारा निर्मित मनोहर नैवेद्य देवीकी सेवामें प्रस्तुत करे । छः अङ्गोंका, गुरुपङ्क्तियोंका तथा अङ्ग-देवताओंका भी पूजन करे । अपने वामभागमें रत्नसिंहासन-युक्त मण्डलकी भावना करके उसपर देवीको ले आकर विराजमान करे और नाना प्रकारके गन्धोंसे युक्त उद्वर्तन आदिका निर्माण करके उसे स्नानीय सामग्रीके रूपमें अर्पित करे । दिव्य जल एवं तेजोमय वस्त्रकी भावना करके जलसे देवीके शरीरका प्रोक्षण करे तथा आकाशतत्त्वसे युक्त दिव्य तेजोमय पूर्वोक्त भावनामय वस्त्रसे देवीके लिये परिधानकी कल्पना करे । फिर विधिवत् वन्दना करके केशोंका संस्कार करे । नाना प्रकारके रत्नोंसे जटित दिव्य कंघीके द्वारा केश झाड़ दे । रेशमके तागोंसे बने हुए गुच्छेदार लटकन लगाकर केशपाशको गूँथे । उसमें नाना प्रकारके रत्नमय पुष्प लगाये । ये सब कार्य भावनाद्वारा ही करने चाहिये । ललाटमें तिलक लगा दे । सीमन्त-भागमें सिन्दूर अर्पित करे । हाथोंमें गजराजके दाँतकी बनी हुई मनोहर चूड़ियाँ पहनाये । बाजूबंद, कंगन और कड़े भी यथास्थान संयोजित करे । पैरोंमें अङ्गुलीयक (बिछुए) समर्पित करे । नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित नूपुर निवेदित करे । कटिभागमें क्षुद्रघण्टिका (करधनी) धारण करावे । सिरमें रत्नमय शीशफूल लगा दे । मस्तकपर रत्न-निर्मित मुकुट तथा कानोंमें सुन्दर ताटङ्क और कुण्डल धारण कराये । नेत्रोंमें काजल लगा दे । नासिकाके अग्रभागमें गजमौक्तिकनिर्मित झुलनी या बुलाक पहनाये । श्रीपत्र, मोती और मणियोंसे विराजित कण्ठभूषा अर्पित करे । तीन आनन्दहार निवेदन करे । रत्नमयी अँगूठी निवेदित करे । गन्ध, चन्दन आदिसे सर्वाङ्गमें लेपन करे । अग्रभागमें कुण्डलसे चिह्नित दो सुवर्णमयी चरणपादुकाएँ समर्पित करे । रत्न-निर्मित झूलेमें बिठाकर देवीको मण्डलमें ले आये और पुनः पाद्यादि समर्पित करके उन सनातनी देवीकी पूजा करे । पुनः गन्धादि देकर भाव-पुष्पोंसे अर्चना करे । कुण्डगोलोद्भव पुष्प तथा वायु-तत्त्वात्मक धूप दे । सहस्र कर्णिकामय पात्रमें रखे हुए परामृतका नैवेद्य निवेदन करे ।

मूलाधार पात्ररूप है और चित्तज्ञान प्रदीपरूप । मूलाधार चक्रसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त व्याप्त अमृतमयी वायुसे व्यजन डुलानेकी सेवा करे । अनहदनादमयी घंटी अर्पित करे । सूर्यमण्डलका दर्पण और चन्द्रमण्डलका उत्तम छत्र सेवामें अर्पित करे । सुधाका महासागर निवेदित करे । भोग्य वस्तुओंका पर्वत प्रस्तुत करे । सुवर्ण, चरु, भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेय तथा चर्वणीय वस्तुएँ निवेदित करे । फिर आचमनीय जल अर्पित करे । तदनन्तर मूलाधारसे उत्थित वायुद्वारा पंखा झले । रजोगुण, तमोगुण और

सत्त्वगुणमय कर्पूरसे मिश्रित तथा रत्नमय पात्रमें परिष्कृत रूपसे स्थापित ताम्बूल अर्पित करे। फिर पुष्प लेकर सुरेश्वरी देवीको नमस्कार करे। मनरूपी नर्तकके गीतनादसे, शृङ्गारादि समुज्ज्वल रसोंसे तथा स्नानादि उपकरणोंसे उत्तम साधक देवीको संतुष्ट करे। वागीश्वरी देवी माता हैं और वागीश्वर पिता। मनसे उनके साथ अपनी एकता या अभिन्नताका चिन्तन करके साधक सिद्धि-लाभ करता है। इस प्रकार किया गया मानसिक पूजन भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। ऐसा भक्त मनसे जो कुछ चाहता है, माता बगलामुखी वह सब कुछ उसे देती हैं। वह कोटि सहस्र कल्पोंतक देवीके लोकमें निवास करता है। जो मनुष्य भक्तियुक्त मनसे भी महादेवीको नैवेद्य निवेदन करना चाहता है, वह दीर्घायु और सुखी होता है। जो मनके द्वारा भी भक्तिभावसे देवीकी परिक्रमा करता है, वह देवीके दिव्य धाममें निवास पाता है। उसे कभी नरकका दर्शन नहीं होता। जो भक्तिभावसे मनके द्वारा देवीको नमन करता है, वह विश्वविजयी होकर देवीके लोकमें प्रतिष्ठित होता है।

देवीका सिंहासन पाँच मुण्डोंपर स्थित है। वे मुण्डमालासे विभूषित हैं। उदयकालके सहस्रों सूर्योंके समान उनकी कान्ति है। वे रत्नमय सिंहासनपर विराज रही हैं।

(भावपुष्प और माला)

मायाहीनता, अहंकारशून्यता, रागराहित्य, मदविहीनता, अमोह, अभ्रंश, अद्वेष, अक्षोभ, अमात्सर्य और अलोभ—इन्हें साधकोंने भावपुष्पकी संज्ञा दी है। अहिंसा सर्वोत्तम पुष्प है, इन्द्रिय-निग्रह दूसरा पुष्प है, दया तीसरा पुष्प है, ज्ञान चौथा पुष्प तथा क्षमा पाँचवाँ पुष्प है। पचास वर्णमय पुष्पोंसे तैयार की हुई माला पञ्चाशिका कही गयी है। इसमें शक्ति एवं शिवस्वरूप सूत्र उपयुक्त होता है। यह माला कुण्डलिनी शक्तिसे गूँथी गयी है। स्वरसहित 'क' से लेकर 'ह' तकके अक्षरोंके अन्तमें सुमेरुकी स्थिति है। इस विधिसे वर्णमालाका सम्यक् परिष्कार करके 'अ' और 'क्ष' को सुमेरु बनाये तथा 'ळ' को मध्यवर्ती मणि। फिर अकारसे लेकर ळकार और 'ळ' से लेकर अकारतक मूल बगलामुखी मन्त्रका जप करके उसे परम तेजमें समर्पित करे। इस प्रकार मानस जपका कार्य पूरा करके होम करे।

(मानस होम)

मूल और परिच्छेदसे रहित अर्थात् अनाद्यन्त अपरिच्छिन्न चिन्मय तत्त्वका चिन्तन करके आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा तथा परमात्मा—इन चारको कोणवर्ती स्तम्भ मानकर चौकोर मण्डलकी भावना करे। उक्त चारसे ही चतुष्कोण चिन्मय कुण्डकी अपनी नाभिमें भावना करे। वह चिन्मय कुण्ड मेखला और योनिसे संयुक्त है। उस चिन्मय कुण्डमें वैष्णव तेज प्रज्वलित है। ऐसी भावना करके आहुति दे।

१—पहले बगलामुखीके मूल मन्त्रका उच्चारण करके—

नाभिचैतन्यरूपाग्नौ मनसा हविषा स्रुचा।
ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ॥स्वाहा॥

'मैं ज्ञानसे उद्दीपित नाभिगत चैतन्यरूप अग्निमें मनोमय हविष्य एवं स्रुक्के द्वारा अपनी इन्द्रिय-वृत्तियोंका हवन करता हूँ।' स्वाहा।

॥ इति प्रथमाहुतिः ॥

२—इसके बाद सहस्रार-चक्रमय कुण्डमें दूसरी आहुति दे। इसमें भी पहले बगलामुखीके मूल मन्त्रका उच्चारण करके इस प्रकार कहे—

धर्माधर्महविर्दीप्ते चात्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्णा वर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ॥स्वाहा॥

'धर्माधर्मरूपी हविष्यसे उद्दीप्त आत्माग्निमें मनोमय स्रुक्द्वारा सुषुम्णा मार्गसे मैं नित्य अपनी इन्द्रिय-वृत्तियोंका हवन करता हूँ।' स्वाहा।

॥ इति द्वितीयाहुतिः ॥

३—पुनः मूलमन्त्रका उच्चारण करके निम्नाङ्कित श्लोक-वाक्य पढ़े—

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी स्रुचा।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम् ॥स्वाहा॥

'प्रकाश और आकाश—ये दो हाथ हैं। इनके सहारे उन्मनीरूपिणी स्रुक्के द्वारा धर्माधर्मकलात्मक घृतसे परिपूर्ण हविष्यका परमात्मस्वरूप अग्निमें हवन करता हूँ।' स्वाहा।

॥ इति तृतीयाहुतिः ॥

४—इसके बाद पुनः मूलमन्त्रके श्लोकको पढ़े—

अन्तर्निरन्तरनिरिन्धन एधमाने मायान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ।
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकासभूमौ
विश्वं जुहोमि वसुधादि शिवावसानम् ॥स्वाहा॥

'जो अन्तःकरणमें बिना ईंधनके ही निरन्तर वृद्धिंगत (प्रज्वलित) हो रहा है, तथा मायारूपी अन्धकारका परिपन्थी (विनाशक) है, उस ज्ञानानलमें, जो अद्भुत चिन्मयी किरणोंके विकासकी भूमि है, मैं पृथ्वी-तत्त्वसे लेकर शिव-तत्त्वपर्यन्त सम्पूर्ण विश्वका हवन करता हूँ ॥' स्वाहा ॥

॥ इति चतुर्थ्याहुतिः ॥

इस प्रकार अन्तर्याग करके साधक साक्षात् ब्रह्ममय हो जाता है। उसमें पुण्य और पाप नहीं रह जाते। वह निश्चय ही जीवन्मुक्त हो जाता है।

(क्रमशः)

श्यामका स्वभाव—७

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

श्रुति-शास्त्र-संत कहते हैं—'परमात्मा परम कारुणिक, अनन्त करुणावरुणालय, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ हैं।

संसारमें प्रत्यक्ष दीख रहा है—जीव अत्यन्त दुखी हैं। कहीं लोग दाने-दानेको तरसते, क्षुधासे तड़पते प्राण त्यागते हैं, कहीं रोगसे पीड़ित कराह रहे हैं। अभाव, रोग, शोक, भय आदिसे मनुष्य अत्यन्त पीड़ित हैं। अकाल मुख फाड़े निगल रहा है शत-शत निरीह प्राण! युद्ध, दंगे आदिमें क्या-क्या नहीं होता। नन्हे शिशु जब भालेकी नोक, संगीन या छुरेपर उछाल दिये जाते हैं, असहाय अबलाओंपर जब उन्मत्त पिशाच अत्याचार करते हैं, घर एवं मुहल्ले जब फूँक दिये जाते हैं, परमाणुबमसे जब पूरा नगर दो क्षणमें राख कर दिया गया—विश्वमें उत्पीड़न, अत्याचारकी परम्परा आज ही तो प्रारम्भ नहीं हुई। यह सब न भी हो तो रोग, शोक, अभाव ही क्या पीड़ा देनेको कम हैं।

श्रुति-शास्त्र-संत जो कहते हैं, वह सत्य नहीं है—यह कहनेका साहस मुझमें नहीं है और जो स्पष्ट प्रत्यक्ष विद्यमान है, उसे कोई अस्वीकार कैसे कर देगा। फिर इन दोनों सत्योंमें समन्वय क्या है?

'परमात्माकी प्रेरणासे सृष्टि होती है तो उसीकी प्रेरणासे प्रलय भी होता है। जीव अविनाशी है और शरीर तो नाशवान् है ही। कोटि-कोटि शरीरोंके नष्ट होनेसे परमात्माका कुछ बिगड़ता नहीं।' यह बात मान ली, किंतु जीव क्षण-क्षण दुखी रहे, वह आर्तक्रन्दन करता रहे और कोई तटस्थ द्रष्टा बना रहे उस क्रन्दनका—वह निष्ठुर होगा या दयालु?

'परमात्माका प्रत्येक विधान मङ्गलमय है।' इस अकाल-में, देश-विभाजनके समय हुए पैशाचिक अत्याचारोंमें, परमाणुबमसे नगरोंके भस्म होनेमें मङ्गल-विधान होगा परमात्माका; किंतु इतना उग्रमङ्गल-विधान? कोई सुखकर, कोमल विधान करनेमें वह समर्थ नहीं है?

'जीवोंका प्रारब्ध! जैसा करो, वैसा भोगो।' ठीक बात; किंतु तब परमात्माकी दयालुता, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञता क्या काम आयेगी? परमात्माका होना तो कर्म-विधानके संचालनमात्रके लिये ही आवश्यक है न?

मैं परमात्माकी बात क्यों ले बैठा? बात यह है कि ईश्वर, भगवान्, परमात्मा, ब्रह्म—पता नहीं कितने नाम लोगोंने इस कन्हाईके रख छोड़े हैं। लोग इसका एक नाम रख देते हैं और कह देते हैं—यह ऐसा है।'

कन्हाई स्वीकार ही करना जानता है। यह उसे अपना नाम मान लेता है और जो गुण नाम रखनेवाले कहें—सब अपनेमें हैं, इसके लिये भी स्वीकृतिमें सिर हिला देता है। यह सब है; किंतु इसके स्वभावकी एक विशेषता पहिचानी है श्रीरामानुजाचार्यजीने। वे कहते हैं—

'रक्षापेक्षामपेक्षते।'

यह नटखट है और खिलाड़ी है। कोई हँसे तो ताली बजाता है—रोये तो ताली बजाता है। अपने खेलमें—अपनी मौजमें तल्लीन—सृष्टि हो या प्रलय, इस आनन्द-कंदका ध्यान ही उधर नहीं जाता। इसे ध्यान दिलाना पड़ता है। आप ध्यान न दिलाओ तो इसका ध्यान प्रलयकी ओर भी नहीं जायगा और ध्यान दिलाया जाय तो चींटीकी

टूटी टाँगकी पीड़ा भी इसे व्यथित कर देगी और उसकी मरहमपट्टी करने भी यह दौड़ा आयेगा।

आप ईश्वर कहो, परमात्मा कहो, भगवान् कहो—कहोगे इस नन्दबाबाके पुत्रको ही और यह 'रक्षापेक्षामपेक्षते !' जो इससे अपेक्षा करे कि 'यह दयामय, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ मेरी रक्षा करे !' उसके लिये—केवल उसके लिये यह अनन्त दयाधाम, नित्यसर्वज्ञ, सर्वसमर्थ है और उसकी रक्षाको दौड़ा आयेगा। अन्यथा, अन्यथा तो संसारमें जो प्रत्यक्ष सत्य हैं, उसे आप देख ही रहे हैं।

× × ×

गजेन्द्रको ग्राहने जलमें पकड़ लिया था। ग्राह जलमें खींच रहा था और गजेन्द्र बाहरकी ओर। सर्वज्ञसे छिपा था कि सरोवरमें क्या संघर्ष हो रहा है? किंतु कहीं कुछ हो रहा हो, इससे उस निर्गुण, निरञ्जन, निर्लेपसे मतलब ?

जी—सच्ची बात यही है कि जिसे आप ईश्वर कहते हैं, वह यह कन्हाई वस्तुतः निर्गुण, निरञ्जन, निर्लेप, निर्विशेष है। इसमें गुण, राग, विशेषता तो आप देते हैं। आप कहते हैं—'दयामय !' तब यह आपके लिये दयामय हो जाता है। अब आपने इसे दयाका गुण दे दिया तो आपसे यह तटस्थ कैसे रहेगा ? आपपर इसका अनन्त स्नेह उमड़ेगा। आपके प्रति इसका विशेष राग होगा।

गजराज थकते गये और अन्ततः लगा कि डूबे। बड़ी कठिनाईसे पाससे एक कमलपुष्प सूँड़से तोड़कर ऊपर फेंकते हुए पुकार उठे—'नारायण ! रक्षा करो।'

उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-
न्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥

(श्रीमद्भा० ८।३।३२ का उत्तरार्द्ध)

अब लीजिये—निर्विशेष सविशेष हो गया। भगवान् नारायण गरुड़पर चढ़े दौड़े और गरुड़का वेग भी उन्हें कम लगा तो कूदकर पैदल भागे। अब कोई ग्राह कैसे गजेन्द्रके लिये विपत्ति बना रह सकता था। अब तो सर्वलोकमहेश्वर चक्र उठाये गजेन्द्रके पक्षमें आ गया था।

× × ×

यह नटखट श्याम—जबतक इसे पुकारो नहीं, कानमें तेल डाले बैठा रहेगा। तबतक आपके लिये ईश्वर है ही नहीं, जबतक आपको ईश्वर स्मरण न आये और आजके मानवका दुर्भाग्य—उसके सम्मुख नृशंस अत्याचारी उसके शिशुओंकी हत्या करता है, उसकी बहिन-बेटीके साथ पैशाचिक व्यवहार करता है; किंतु उसे रोने-चिल्लानेको छोड़कर ईश्वरको पुकारनेका स्मरण नहीं आता।

एक बात और—आप पुलिसकी, सेनाके आनेकी आशा भी करते रहेंगे, अपनी बुद्धि या लाठीका सहारा भी लेते रहेंगे और कन्हाईको भी पुकारेंगे तो यह नहीं सुनेगा। इसका स्वभाव ही है कि यह तभी दौड़ता है, जब मनुष्य केवल इसीसे आशा करता है। दूसरे किसीसे, अपनी किसी भी शक्तिसे किंचित् भी आशा आपको है तो यह कृष्ण आपकी उस आशाके सक्रिय होनेमें टाँग अड़ाने नहीं आयेगा। जब कोई आशा, कोई आश्रय न रह जाय—इसे पुकार लीजिये ! निश्चिन्त रहिये—ऐसी पुकार अनसुनी यह कर नहीं सकता।

श्याम पुकारे बिना नहीं सुनता। कोई और आशा-भरोसा रखकर पुकारो तो इसे लगता ही नहीं कि इसको पुकारा जा रहा है। यह एक ही भाषा समझता है—हृदयकी भाषा और हृदय तो एक साथ एकको ही पुकार सकता है। आप केवल मुखसे पुकारें तो कन्हाई समझेगा नहीं। जो बात समझी ही नहीं गयी, उसके अनुसार कोई व्यवहार कैसे करेगा ?

द्रुपदराजतनया, पाण्डवपट्टमहिषी द्रौपदीको दुर्योधनने भरी राजसभामें पकड़ मँगाया। पाण्डव द्यूतमें हार चुके थे। वे धर्मसे—अपने सत्यसे बँधे थे। कुछ न कर सकते थे, न बोल सकते थे। दुर्योधनने अपने अनुजको आज्ञा दी—'इसे नंगी कर दो।' राजसूय यज्ञमें जिसका साम्राज्ञी-पदपर अभिषेक हुआ, उसका यह अपमान ! अग्रजकी आज्ञासे दुष्ट दुःशासनने एकवस्त्रा द्रौपदीकी साड़ीका छोर पकड़ लिया और लगा खींचने। द्रौपदीको अब भी विश्वास नहीं था कि इस सभामें दुःशासनको यह धृष्टता करनेका साहस होगा; किंतु·······

श्रीकृष्ण सर्वज्ञ नहीं हैं ? उनको पता नहीं है कि क्या हो रहा है हस्तिनापुरकी कौरव-राजसभामें ? किंतु श्यामका स्वभाव—द्रौपदी परमभक्त सही, कन्हाईको वह पुकार कहाँ रही है। पुकारे बिना—रक्षाकी अपेक्षा किये बिना तो नन्दनन्दन कुछ करता नहीं।

'महाराज धृतराष्ट्र अंधे सही, किंतु संजय और विदुर उनको सब सूचित कर रहे हैं। पुत्रवधूको उनका ही पुत्र

नंगी करने जा रहा है—कुछ कहेंगे । दादाजी, अतुल पराक्रम परमधर्मज्ञ भीष्मके विद्यमान रहते दुःशासनका यह साहस ? ये रोक देंगे ! गुरुदेव द्रोणाचार्य भी तो हैं। ब्राह्मण हैं और पाण्डवोंके भी गुरु हैं—ये विरोध करेंगे इस अन्यायका ! मेरे पाँचों पति यहीं हैं—ये कुछ करेंगे !' द्रौपदीके भयार्त नेत्र चारों ओर घूम गये । सबने सिर झुका रखा है । कहींसे कोई आशा नहीं ।

'कृष्ण ! श्यामसुन्दर ! सदाके मेरे विपत्तिके सहायक !' प्राणोंने पुकारा।

यह क्या हुआ ? कन्हाई भी अनसुनी करता है ? वह भी सहायता करने नहीं दौड़ा ? नहीं ही दौड़ा; क्योंकि द्रौपदीने अभीतक साड़ी हाथसे पकड़ रखी है । अपना बल अभी रक्षामें लगा है। यशोदाका लाल अभी नहीं आ सकता। दूसरा किंचित् भी भरोसा है तो यह घनश्याम बीचमें नहीं पड़ता ।

अबला नारी और असीम बलशाली दुष्टहृदय दुःशासन ! साड़ीको झटका लगा और हाथसे छूट गयी। व्याकुल होकर द्रौपदीने दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकारा—

'श्रीकृष्ण ! द्वारकावासिन् ! देवदेव ! जगत्पते !'

एकवस्त्रा, रजस्वला द्रौपदी—अस्पृश्या, अपवित्र दशा; किंतु कृष्णके लिये क्या पवित्र, क्या अपवित्र ! लो, वस्त्रावतार हो गया कन्हाईका । मूर्ख दुःशासन ! कितने वस्त्र खींचेगा वह ? अनन्तका कहीं अन्त हुआ है कि दुःशासन ही पा लेगा । वस्त्रोंकी राशि बढ़ती गयी; किंतु द्रौपदीकी साड़ी शरीरपर ज्यों-की-त्यों । थककर, पसीनेसे लथपथ होकर दुःशासन बैठ गया थककर—हारकर ।

× × ×

दूसरोंकी बात छोड़ दीजिये—वैसे सच यह है कि कन्हाईके लिये कोई दूसरा है नहीं । सब उसके अपने ही हैं । दूसरा—परपक्ष वह, जो अपनेको पराया माने; किंतु कह रह रहा हूँ इसके व्रजकी बात ।

नन्दबाबाको अजगरने पकड़ा । वह महासर्प बाबाके पैर निगलने लगा और कमरतक उन्हें निगल गया । सब गोप जागे । सबने जलती लकड़ियोंसे खूब-खूब पीटना प्रारम्भ किया सर्पको । बड़ा हल्ला-गुल्ला मचा; किंतु कृष्ण खुर्राटे लेकर सो रहा । इसकी नींद तब टूटी, जब बाबाने पुकार की—'कृष्ण ! कृष्ण ! मुझे सर्प निगले जा रहा है । इससे जल्दी बचा !'

दूसरी बार बाबा यमुनामें स्नान करने उतरे तो उन्हें कोई वरुणका सेवक पकड़ ही ले गया । यमुनामें गोप कूदे और उन्होंने पुकारा—'कृष्ण ! दौड़ लाला, व्रजराज डूब गये !'

वनमें दावाग्नि लगी । गायें, गोपबालक—सब घिर गये । कन्हाई भी उनके मध्य ही था और सो नहीं रहा था; किंतु कुछ करना चाहिये, गायों और सखाओंको बचाना चाहिये, यह उसे तब स्मरण आया—जब दावानल समीप आ गया और सखा भयत्रस्त पुकार उठे—'श्याम ! हम तेरे हैं । यह दावाग्नि हमें भस्म करने आ रहा है । हमारी रक्षा कर !'

यह कन्हाई अग्निपायी है । दावाग्नि पी लेना इसके लिये कोई बात नहीं है । यह पी तो लेता है भव-दावानल; किंतु जब कोई कहे, कोई पुकारे । व्रजके सब लोग उस दिन कालियह्रदके किनारे ही सो गये थे । सब थे—पूरा व्रज था वहाँ । रात्रिमें दावाग्नि लगी और बढ़ी, सब जागे; किंतु यह अग्निपायी तब जागा, जब सबने पुकार लगायी—'कृष्ण ! श्यामसुन्दर ! यह दावानल बढ़ता आ रहा है । इससे हमारी रक्षा कर !'

गोपियाँ—प्रेमकी ध्वजा गोपियाँ । वे रात्रिमें वनमें गयी थीं कुछ अपने कार्यसे ? इस भुवनमोहनकी मोहिनीने ही उन्हें खींचा था । वे इसके लिये गयी थीं और इसके साथ ही क्रीड़ा कर रही थीं । श्याम अकेला भी नहीं था । इसके अग्रज भी थे साथ ही; किंतु जैसा छोटा भाई, वैसा बड़ा भाई । शङ्खचूड़ यक्षने गोपियोंको पकड़ा—बलपूर्वक उठाया और भाग चला । दोनों भाई ऐसे—मानो कुछ देखते ही नहीं । दोनों दौड़े और पूरे शालवृक्ष उखाड़कर दौड़े; किंतु कब ? जब गोपियोंने पुकार की—'हे अमितविक्रम राम ! हे कृष्ण ! रक्षा करो ।'

× × ×

सदा तो कोई पुकारनेकी स्थितिमें नहीं रहता । ऐसा होता है—ऐसे अवसर आते हैं कि विपत्ति अचिन्तित, अकस्मात् आती है और ऐसे आती है कि हमको सोचने-

समझने, पुकारनेका अवसर ही नहीं देती। निद्रामें छत टूट गिरे या कुछ और हो जाय—आप कैसे पुकारेंगे किसीको ?

कन्हाईको आपने इतना अज्ञ समझ लिया है ? पुकारनेकी स्थिति हो और कोई न पुकारे तो कन्हाई उसकी ओर ध्यान नहीं देता, यह इसका स्वभाव है। यह भी इसका स्वभाव है कि सृष्टिमें प्रलय हो या और कुछ, इसके नेत्र नहीं उठते; किंतु इसके जनपर संकट आये और वह पुकारनेकी स्थितिमें नहीं हो, श्याम स्वतः सतर्क रहता है। इससे ऐसे अवसरपर प्रमाद नहीं हुआ करता।

गोपकुमारोंने अघासुरके मुखको कोई रमणीय गुफा समझा। एक बार उनमेंसे एकने कहा भी—'मित्रो ! कहीं यह अजगर ही हुआ तो ? हम इसके मुखमें जायँ और यह हमें खा ले ?'

सब हँस पड़े—'अयं तथा चेद् बकवद् विनङ्क्ष्यति।'

'कन्हाई कहीं चला गया है ? यह हमें निगलने लगेगा तो बकासुरके समान श्याम इसे भी चीर फेंकेगा।'

सब चले गये अघासुरके मुखमें और जाते ही मूर्छित हो गये। अब पुकारे कौन ? किंतु पुकारकी आवश्यकता ? जिसके भरोसे निर्भय घुस गये थे, वह कहीं अपने आश्रयको अविश्वस्त कर सकता है।

इन बालकों और गायोंने भी कालियह्रदका विषैला जल पी लिया था और तत्काल निष्प्राण होकर गिर पड़े थे। सब बहुत प्यासे थे। कन्हाई पीछे छूट गया है, इस ओर भी किसीका ध्यान नहीं गया था। न स्मरण—न पुकार। मृत पड़े थे सब कालियह्रदके तटपर; किंतु थे तो सब इस व्रजराजकुमारके। वह बढ़ आया स्वयं और उसकी दृष्टि ही तो जड प्रकृतिको जीवन देती है।

कन्हाईका स्वभाव—जो उसके हैं, उनको भूलता नहीं। एक क्षणको भी उनकी ओरसे उदासीन होना इसे नहीं आता। किंतु यह नटखट रूठता है, जब इसे पुकारनेका अवसर हो और कोई न पुकारे। पुकारने योग्य स्थिति न हो तो स्वजनके मस्तकपर इसके अभय कर तो हैं ही; किंतु जो कन्हाईके नहीं हो गये हैं—उनका काम पुकारे बिना नहीं होगा। पुकार तो किसीकी कभी इसने अनसुनी नहीं की।

भगवान्‌का नित्य अप्राकृत सच्चिदानन्द शरीर

[भगवत्स्वरूप दिव्य शरीरमें क्या चीजें कभी नहीं रहतीं, उसका क्या स्वरूप है ?]

उत्कट काम, क्रोध, चपलता, मत्सरता, मद, हिंसा, खेद।
आकाङ्क्षा, असत्य, आशङ्का, भ्रम, श्रम, मोह, विषमता-भेद ॥
परापेक्षता, आमय, भय, विनाशिता, तन्द्रा, राग-द्वेष।
असौन्दर्य, विषाद रहते न दिव्य विग्रहमें किंचित लेश ॥
नित्य सत्य, विभु प्रभु माया-गुणरहित, सर्वसद्गुण-आधार।
सकल भेदविरहित, अज, अव्यय सत्-चित्-आनँदमय साकार ॥
परम स्वतन्त्र स्वरूपदेह, शुचि, देही-देह-भेदसे हीन।
स्वेच्छामय-लीला-तनु न कभी देश-काल-कर्मादि-अधीन ॥

श्रीराधाके दिव्य रूप और उनके आराधनका महत्त्व

(श्रीराधाजन्माष्टमी महोत्सवके उपलक्ष्यपर श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका भाषण)

रसवलितमृगाक्षीमौलिमाणिक्यलक्ष्मीः
प्रमुदितमुरवैरिप्रेमवापीमराली ।
व्रजवरवृषभानोः पुण्यगीर्वाणवल्ली
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु ॥
व्रजकुलमहिलानां प्राणभूताखिलानां
पशुपपतिगृहिण्याः कृष्णवत् प्रेमपात्रम् ।
सुललितललितान्तःस्नेहफुल्लान्तरात्मा
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु ॥

परात्पर समग्र भगवान्‌का स्वरूप-तत्त्व और उनका भगवत्स्वरूप सच्चिदानन्द-शरीर

परात्पर परमतत्त्व-स्वरूप एक है—उसकी प्रधानतया तीन नाम-रूपोंमें अभिव्यक्ति होती है—'ब्रह्म', 'परमात्मा' और 'भगवान्' ।

—ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।
(श्रीमद्भागवत १ । २ । ११)

या यों कह सकते हैं—'निर्गुण-निराकार-निर्विशेष', 'सगुण-निराकार-सविशेष' और 'सगुण-साकार-सविशेष ।' तीनोंकी पृथक्-पृथक् अनुभूति होती है—तीन प्रकारके साधकोंको । निर्गुण-निराकार ब्रह्मकी ज्ञानियोंको, सगुण-निराकारकी योगियोंको और सगुण-साकारकी भक्तोंको । वस्तुतः ये तीन पृथक्-पृथक् भिन्न तत्त्व नहीं हैं । एक ही सत्य तीन रूपोंमें नित्य प्रकाशित है । इन तीनोंका तथा इनसे संयुक्त समस्त तत्त्वोंका जो एक समग्र स्वरूप है, वही परात्पर परमतत्त्व स्वयं भगवान् हैं । वे भगवान् सच्चिन्मय ब्रह्म (निराकार-निर्गुण ब्रह्म) की, अविनाशी अमृत (नित्य-तत्त्वज्ञानरूप मुक्ति) की, शाश्वत नित्यधर्म (भक्तिरूपी परमधर्म) की और ऐकान्तिक सुख (प्रेमरसमय परमानन्द) की प्रतिष्ठा या आश्रय हैं— ।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥
(गीता १४ । २७)

महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवतके समग्र भगवान् श्रीकृष्ण इन्हीं परात्पर परतत्त्व स्वयं भगवान्‌के रूपमें ज्ञानियोंके उपास्य निर्विशेष अखण्ड चित्सत्तामात्र ब्रह्मको अपनी महिमा बता रहे हैं—

मदीयं महिमानं च परब्रह्मेति शब्दितम् ।
(श्रीमद्भागवत ८ । २४ । ३८)

'मेरी महिमा ही परब्रह्म-शब्दसे कही जाती है ।'

पद्मपुराणमें भगवान् शंकर वन्दना करते हैं—

यन्नखेन्दुरुचि ब्रह्म ध्येयं ब्रह्मादिभिः सुरैः ।
गुणत्रयमतीतं तं वन्दे वृन्दावनेश्वरम् ॥

'जिसके नखचन्द्रकी ज्योतिरूप ब्रह्मका ब्रह्मादि देवगण भी ध्यान करते हैं, उस त्रिगुणातीत वृन्दावनेश्वर-की मैं वन्दना करता हूँ ।'

इसीसे केवल ब्रह्मको प्राप्त होना समग्र भगवान्‌को पूर्णरूपसे प्राप्त होना नहीं है । भगवान् श्रीकृष्ण ज्ञानकी परानिष्ठाका वर्णन करते हुए 'विशुद्ध बुद्धि' आदि साधनोंके द्वारा 'ममतारहित' तथा 'प्रशान्त-अन्तःकरण' होनेपर ब्रह्मरूप होनेकी योग्यताका प्राप्त होना बतलाते हैं । इसके बाद कहते हैं—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु .... ॥
(गीता १८ । ५४)

'वह साधक साधनाके परिपक्व होनेपर ब्रह्मरूप हो जाता है । (तदनन्तर उस ब्रह्मात्मैक्य-स्वरूप पुरुषके लक्षणोंका वर्णन करते हुए कहते हैं कि) वह प्रसन्नात्मा (आनन्दमय) हो जाता है, न शोक

करता है, न आकाङ्क्षा करता है और सब भूतोंमें समत्व-लाभ कर चुकता है।'

पर अभी भगवान् 'जो कुछ तथा जैसे कुछ हैं', **'यावान् यश्चास्मि'** उनको पूर्णरूपसे तत्त्वतः जानना अवशेष रह जाता है। अतः इसके बाद भगवान् कहते हैं कि वह साधक मेरी (भगवान्की) पराभक्ति—(परमप्रेम) को प्राप्त करता है—'मद्भक्तिं लभते पराम्', जिसके द्वारा वह साधक भगवान्को समग्ररूपसे जानकर उनकी लीलामें प्रविष्ट हो जाता है।

यहाँ संक्षेपमें इतना ही समझना है कि ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—इन सबका जो एक महान् सम्मिलित दिव्य तत्त्वरूप है, वही समग्ररूप है और वही श्रीकृष्ण हैं।

ये जहाँ सगुण कहे जाते हैं, वहाँ भी निर्गुण ही हैं और साकार होकर भी निराकार ही हैं; क्योंकि न तो इनमें प्रकृतिजनित सत्त्व-रज-तम गुण हैं और न इनका चिन्मय भगवत्स्वरूपसे अतिरिक्त कोई पाञ्चभौतिक देह ही है।

योऽसौ निर्गुण इत्युक्तः शास्त्रेषु जगदीश्वरः।
प्राकृतैर्हेयसंयुक्तैर्गुणैर्हीनत्वमुच्यते॥

'शास्त्रोंमें जगदीश्वरको जो निर्गुण कहा गया है, इसमें उनमें किसी हेयगुण (प्राकृतिक सत्त्वादि) गुणोंके संयोगका ही अभाव बतलाया गया है।' इसीसे वे निर्गुण हैं।

इसी प्रकार उनके भगवत्स्वरूप दिव्य शरीरमें भौतिक मेद-मांस-अस्थि आदि भी नहीं हैं। पद्मपुराणमें कहा गया है—

न तस्य प्राकृता मूर्तिर्मेदोमांसास्थिसम्भवा।
........................सर्वात्मा नित्यविग्रहः॥
(पद्मपुराण, पाताल० ७७। ४३)

'श्रीभगवान्की श्रीमूर्ति प्राकृतिक मेद-मांस-अस्थि आदिके द्वारा निर्मित नहीं है। वह सबका आत्मस्वरूप नित्य श्रीविग्रह है।'

भगवती श्रीरुक्मिणीजी प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णसे कहती हैं—

त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्त-
र्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम्।
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा
या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री॥
(श्रीमद्भागवत १०। ६०। ४५)

'जिसको आपके चरणारविन्द-मकरन्दकी सुगन्ध सूँघनेको नहीं मिली है, वही मूढ़ स्त्री (बाहर) किसी चमड़ी, दाढ़ी-मूँछ, रोम, नख और केशोंके द्वारा ढके हुए और भीतर मांस, हड्डी, खून, कीड़े, मल-मूत्र, कफ, पित्त और वातसे भरे हुए पुरुष-शरीररूप शव (मुर्दे) को प्रियतम पति समझकर सेवन करती है।'

इससे सिद्ध है कि भगवान् श्रीकृष्णका दिव्य शरीर इन भौतिक पदार्थोंसे रहित दिव्य भगवत्स्वरूप है।

पद्मपुराण, पातालखण्डके एक कथा-प्रसङ्गमें आया है कि एक बार भगवान् शंकरको सजल-जलद-नील-स्निग्धश्यामवर्ण अखिल-कल्याण-गुण-मन्दिर भगवान् श्रीकृष्णने दर्शन देकर हँसते हुए उनसे इस प्रकार सुधा-मधुर वचन कहे—

यदद्य मे त्वया दृष्टमिदं रूपमलौकिकम्।
घनीभूतामलप्रेमसच्चिदानन्दविग्रहम्॥
नीरूपं निर्गुणं वापि क्रियाहीनं परात्परम्।
वदन्त्युपनिषत्संघा इदमेव ममानघ॥
प्रकृत्युत्थगुणाभावादनन्तत्वात्तथेश्वरम्।
असिद्धत्वान्मद्गुणानां निर्गुणं मां वदन्ति हि॥
अदृश्यत्वान्ममैतस्य रूपस्य चर्मचक्षुषा।
अरूपं मां वदन्त्येते वेदाः सर्वे महेश्वर॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड २। ६६—६९)

"हे अनघ! तुमने जो आज मेरा यह अलौकिक रूप देखा है, उपनिषत्-समूह मेरे इसी घनीभूत निर्मल

प्रेममय सच्चिदानन्दमय रूपका ही निर्गुण, निराकार, निष्क्रिय और परात्पर ब्रह्म कहकर प्रतिपादन करते हैं। मुझमें प्रकृतिजनित गुण न होने तथा मेरे (भगवत्स्वरूपभूत) गुण लोकदृष्टिमें सिद्ध न होनेके कारण सब मुझे 'निर्गुण' कहते हैं। मेरा कहीं अन्त न होनेसे लोकोंमें मैं 'ईश्वर' कहा जाता हूँ। महेश्वर! चर्मचक्षुओंके द्वारा मेरा यह चिदानन्दमय दिव्य रूप किसीको दीखता नहीं, इसीलिये वेदसमूह मुझे अरूप या 'निराकार' कहते हैं।"

भगवान्‌की स्वरूपाशक्ति श्रीराधाजीका स्वरूप-तत्त्व और उसका दिव्य चिन्मय शरीर

अतएव ये सगुण-साकार भी वस्तुतः निर्गुण-निराकार ही हैं। ये नित्य सच्चिदानन्द हैं। साथ ही, इनमें इनकी स्वरूपाशक्तिका नित्य दिव्य विलास है। निर्विशेषता हो या सविशेषता, उस स्वरूपाभिन्न शक्तिका कभी, किसी भी क्षण इनमें अभाव नहीं होता—सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप सत्ताके लिये उसका होना अनिवार्य आवश्यक है। वह स्वरूपा-शक्ति ही भगवान्‌को नित्य शक्तिमान् रखती है। वह भगवान्‌से पृथक् वस्तु नहीं है, न कहीं बाहरसे उसका आना-जाना होता है। वह नित्य स्वरूपगत है। वही दिव्य मूल प्रकृति है। संधिनी, संविद् और ह्लादिनीके नामसे वही प्रकाशित है। वही अनन्त शक्तियोंकी मूलाधार है। उसीका नाम 'श्रीराधा' है। भगवान् शिव पार्वतीजीसे कहते हैं—

तत्प्रिया प्रकृतिस्त्वाद्या राधिका कृष्णवल्लभा।
तत्कलाकोटिकोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः॥
तस्याङ्‌घ्रिरजसः स्पर्शात् कोटिविष्णुः प्रजायते॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड ६९। ११७-११८)

'उनकी प्रियतमा कृष्णवल्लभा श्रीराधिका ही आद्याप्रकृति हैं। उन राधिकाके कोटि-कोटि कलांशसे ही त्रिगुणमयी दुर्गा आदि देवियोंका प्रादुर्भाव होता है। उन राधिकाके पद-रज-स्पर्शसे करोड़ों विष्णुओंका (व्यापक-पालक शक्तियोंका) उदय हुआ करता है।'

श्रीराधाके स्वरूप-तत्त्वकी महिमाके प्रसङ्गमें ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आया है—

"श्रीभगवान्‌के श्रीअङ्गसे सर्वश्रेष्ठ भगवान्‌की अभिन्न-स्वरूपा महाशक्ति मूल प्रकृति राधाका आविर्भाव हुआ। वे ही पाँच रूपोंमें अभिव्यक्त हुईं—राधा, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती और सावित्री। इनमें मूल प्रकृतिरूपा श्रीराधा भगवान्‌के प्रेम और प्राणोंकी अधिदेवी तथा पञ्चप्राण-स्वरूपिणी हैं। वे परमात्मा श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं, सम्पूर्ण देवियोंमें अग्रगण्य हैं, सबकी अपेक्षा इनमें सुन्दरता अधिक है। इनमें सभी सद्गुण सदा विद्यमान हैं। ये परम सौभाग्यवती और मानिनी हैं। इन्हें अनुपम गौरव प्राप्त है। परब्रह्मका वामार्द्धाङ्ग ही इनका स्वरूप है। ये ब्रह्मके समान ही गुण और तेजसे सम्पन्न हैं। इन्हें परावरा, सारभूता, परमाद्या, सनातनी, परमानन्दरूपा, धन्या, मान्या और पूज्या कहा जाता है। ये नित्यनिकुञ्जेश्वरी, रासक्रीड़ाकी अधिष्ठात्री देवी हैं। परमात्मा श्रीकृष्णके रासमण्डलमें इनका आविर्भाव हुआ है। इनके विराजनेसे रासमण्डलकी विचित्र शोभा होती है। गोलोकधाममें रहनेवाली ये देवी 'रासेश्वरी' एवं 'सुरसिका' नामसे प्रसिद्ध हैं। रासमण्डलमें पधारे रहना इन्हें बहुत प्रिय है। ये गोपीके वेषमें विराजती हैं। ये परम आह्लादस्वरूपिणी हैं। इनका विग्रह संतोष और हर्षसे परिपूर्ण है। ये निर्गुणा (लौकिक त्रिगुणोंसे रहित स्वरूपभूत गुणवती), निर्लिप्ता (लौकिक विषयभोगसे रहित), निराकारा (पाञ्चभौतिक शरीरसे रहित दिव्य-चिन्मयस्वरूपा), आत्मस्वरूपिणी (श्रीकृष्णकी आत्मा) नामसे विख्यात हैं। इच्छा और अहंकारसे ये रहित हैं। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही इन्होंने अवतार धारण कर रक्खा है। वेदोक्त विधिके अनुसार ध्यान करनेसे विद्वान् पुरुष इनके रहस्यको समझ पाते हैं। सुरेन्द्र एवं मुनीन्द्र प्रभृति समस्त प्रधान देवता अपने चर्मचक्षुओंसे इन्हें देखनेमें असमर्थ हैं। ये अग्निशुद्ध

नीले रंगके दिव्य वस्त्र धारण करती हैं। अनेक प्रकारके दिव्य आभूषण इन्हें सुशोभित किये रहते हैं। इनकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान है। इनका सर्वशोभासम्पन्न श्रीविग्रह सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न है। भगवान् श्रीकृष्णके भक्तको दास्य-रति प्रदान करनेवाली एकमात्र ये ही हैं; क्योंकि सम्पूर्ण सम्पत्तियोंमें ये इस दास्यसम्पत्तिको ही परम श्रेष्ठ मानती हैं। श्रीवृषभानुके घर पुत्रीके रूपसे ये पधारी हैं। इनके चरणकमलका संस्पर्श प्राप्तकर पृथ्वी परम पवित्र हो गयी है। मुने! जिन्हें ब्रह्मा आदि देवता नहीं देख सके, वही ये देवी भारतवर्षमें सबके दृष्टिगोचर हो रही हैं। ये स्त्री-रत्नोंमें साररूपा हैं। ये भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर इस प्रकार विराजती हैं, जैसे आकाशस्थित नवीन नील मेघमें बिजली चमक रही हो। इन्हें पानेके लिये ब्रह्माने साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की थी। उनकी तपस्याका उद्देश्य यही था कि इनके चरणकमलके नखके दर्शन सुलभ हो जायँ, जिससे मैं परम पवित्र बन जाऊँ; परंतु स्वप्नमें भी वे इन भगवतीके दर्शन प्राप्त न कर सके, फिर प्रत्यक्षकी तो बात ही क्या है। उसी तपके प्रभावसे ये देवी वृन्दावनमें प्रकट हुई हैं—धराधामपर इनका पधारना हुआ है, जहाँ ब्रह्माजीको भी इनका दर्शन प्राप्त हो सका। ये ही देवी भगवती राधाके नामसे प्रसिद्ध हैं।'
(ब्रह्मवैवर्त्त,प्रकृतिखण्ड १। ४१—५३)

ब्रह्माजीने श्रीराधासे कहा है—

श्रीकृष्णस्त्वमियं राधा त्वं राधा वा हरिः स्वयम्।
... ... इति केन निरूपितम्॥

× × ×

अस्यांशा त्वं त्वदंशो वाप्ययं केन निरूपितम्।

'आप राधा श्रीकृष्ण हैं, या स्वयं श्रीहरि ही राधा हैं—इसका निरूपण कौन करे।'

× × ×

'आप इनका अंश हैं या ये आपका अंश हैं—इसका निरूपण कौन करे।'

नारदपञ्चरात्रमें भगवान् शिवके वचन हैं—

यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा॥
(२।३।५१)

'जैसे श्रीकृष्ण विकाररूपा प्रकृतिसे परे ब्रह्मस्वरूप हैं, वैसे ही श्रीराधाजी प्रकृतिसे परे निर्लिप्त ब्रह्मस्वरूपा हैं।'

भगवान् श्रीराधामाधव दोनों नित्य 'परस्पर-विरोधिगुणधर्माश्रयी'

यहाँ यह प्रश्न होता है कि भगवान् तथा उनकी शक्ति श्रीराधाजी एक ही कालमें एक ही साथ निर्गुण भी सगुण भी, निराकार भी साकार भी, अव्यक्त भी व्यक्त भी आदि कैसे हैं? इसका उत्तर स्पष्ट है कि भगवान् सर्वथा, सर्वदा, स्वभावतः ही नित्य 'परस्पर-विरोधिगुणधर्माश्रयी' हैं।

वे अजन्मा होते हुए भी जन्म लेते हैं, अविनाशी होते हुए भी अन्तर्धान होनेकी लीला करते हैं, समस्त लोकोंके महान् ईश्वर होते हुए भी भक्तोंके पराधीन रहते हैं (गीता ४। ६*)। जिनके भीतर-बाहर नहीं हैं, पूर्वापर नहीं हैं, जो जगत्‌के पूर्व भी हैं, पर भी हैं, बाहर भी हैं, भीतर भी हैं, जो स्वयं जगत् हैं, वे अव्यक्त नराकृति ब्रह्म यशोदामैयाके हाथों उनके अपने प्राकृत पुत्रकी तरह ऊखलमें रस्सीसे बँध जाते हैं। (श्रीमद्भागवत १०। ९। १३-१४†)

वे एक होकर ही असंख्य गोपियोंके साथ असंख्य रूपोंमें रासक्रीड़ा करते हैं।

उनमें एक ही साथ बृहत्त्व और क्षुद्रत्व, विभुत्व

---

* अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥

† न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः॥
यं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम्।
गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा॥

और अणुत्व, अपरिच्छिन्नत्व और परिच्छिन्नत्व विद्यमान रहते हैं। इसी प्रकार उनकी स्वरूपा-शक्ति राधिकामें भी 'परस्परविरोधी गुण-धर्म' साथ-साथ रहते हैं। वे भी निर्गुण, निराकार, निर्लिप्त, आत्मस्वरूप, निरीह, निरहंकार होते हुए नित्य दिव्य भावविग्रहरूपा हैं तथा भक्तानुग्रहविग्रहा हैं—

निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्तात्मस्वरूपिणी।
निरीहा निरहंकारा भक्तानुग्रहविग्रहा॥

एवं—

विभुरपि कलयन् सदातिवृद्धिं
गुरुरपि गौरवचर्यया विहीनः।
मुहुरुपचितवक्रिमापि शुद्धो
जयति मुरद्विषि राधिकानुरागः॥

श्रीराधाका प्रेम विभु (पूर्ण) होनेपर भी सदा वर्धनशील, गुरु (सर्वोत्कृष्ट) होनेपर भी गौरव आदिसे विहीन है और उसमें बढ़ी हुई वक्रिमा होते हुए भी वह शुद्ध है।

शुद्ध प्रेम श्रीराधाका है नित्य पूर्ण, विभु, नित्य अपार।
किंतु देखता कमी नित्य, बढ़ता रहता पल-पल सुखसार॥
अति गुरु, वह सर्वोत्कृष्ट, अति गौरवमय, अत्यन्त महान।
गौरव अहंकारसे विरहित किंतु पवित्र दैन्यकी खान॥
बढ़ी हुई वक्रिमा अनोखी आती उसमें बिना प्रयास।
किंतु सुनिर्मल सरल, बढ़ाती नित शुचिता-सरलता-मिठास॥
नित्य विरुद्ध धर्म-गुण-आश्रययुक्त शुद्ध राधा-अनुराग।
धन्य-धन्य प्रियतम-स्वभाव-अनुगत नित शुचि विरागमय राग॥

महाभावस्वरूपा श्रीराधाके द्वारा ही अमूर्त-मूर्त सभी भावोंका विकास-विस्तार तथा उन-उन भावोंके अनुसार तदनुरूप रसतत्त्वका ग्रहण होता रहता है। परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं रसस्वरूप हैं और उन्हींकी अभिन्न-स्वरूपा आनन्दरूपिणी श्रीराधा भावस्वरूपा हैं। इन्हींकी व्यक्त लीलाक्षेत्रमें नित्य व्यक्त लीला चलती है और यही अव्यक्त लीलाक्षेत्रमें स्वरूपगत लीलामय रहती हैं। इनकी कायव्यूहरूपा भावसमन्विता श्रीगोपाङ्गनाएँ इन्हीं मूल महाभावरूपा ह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके अनन्त विचित्र विकास-विलास हैं। इस 'भाव' में परम और चरम त्याग है।

इस पवित्रतम प्रेमराज्यके दिव्य लीलाक्षेत्रमें श्रीराधाजी, उन अत्यन्त मधुर दिव्य अमृतफलयुक्त नित्य वृक्षकी शाखा-प्रशाखारूपा श्रीगोपाङ्गनाएँ अथवा इनके अनुगत रहनेवाले इसी श्रेणीके विशुद्ध प्रेमी भक्तोंके द्वारा जो कुछ भी भोग-त्याग, वासना-कामना, साधन-भजन और चेष्टा-क्रिया आदि होते हैं, सब सहज ही अपने प्रियतम भगवान्‌की सेवाके लिये ही होते हैं। प्रियतम भगवान्‌की सेवा बनती रहे और उन्हें सुख प्राप्त होता रहे, यही एक मात्र उनके जीवनका—जीवनके प्रत्येक विचार-आचारका प्रयोजन होता है। वे सेवाके द्वारा प्रियतम भगवान्‌को सुखी करना चाहते हैं, पर स्वयं सुखी होनेके लिये उनकी सेवा करते हों—यह बात उनकी कल्पनामें भी कभी नहीं आती। यह सत्य है कि प्रियतमको सुखी देखनेपर—उनके द्वारा अवाञ्छनीय होनेपर भी उन्हें कोटि-कोटि गुना अधिक सुख मिलता है; परंतु वे इस निजसुख-प्राप्तिके लिये सेवा नहीं करते, वरं जिस निज-सुखसे प्रियतम-सेवामें जरा भी बाधा पड़ती है, उसे वे महान् अपराध मानकर उसका तिरस्कार तथा वर्जन करते हैं।

एक बार एक प्रेमिका गोपी अपने प्रियतम भगवान्‌की सहज सेवा कर रही थी। उसको दिखायी दिया—भगवान्‌के मुखमण्डलपर प्रसन्नता छा रही है। यों उनकी प्रसन्नमुद्रा देखते ही गोपीका सुख-समुद्र उमड़ा। नेत्रोंमें प्रेमाश्रु आ गये। सुख-सागरकी निमग्नतासे देह-स्तम्भरूप सात्त्विक भावका उदय हो गया। क्षणभरके लिये सेवाका कार्य रुक गया। बादमें जब चेतना हुई, तब उसने अपने इस सुखको प्रियतमकी सेवाका बाधक मानकर असह्य पश्चात्ताप-पीड़ाका अनुभव किया। अपनेको तथा अपने उस सुखको उसने धिक्कार दिया। वस्तुतः इस प्रकारके

प्रेमीजन सेवाके जरा-से व्यवधानको भी सहन नहीं कर सकते। उनका स्मरण, चिन्तन, कर्म—सभी कुछ सहज ही प्रियतम भगवान्का सेवा-सुखस्वरूप ही हो जाता है।

सेवा करती नित प्रियतमकी प्रियको सुख पहुँचाने हेतु।
करती सब मर्यादा-रक्षा, देती तोड़ सहज श्रुति-सेतु॥
प्रियतमको सुख पहुँचे, उसका एकमात्र इतना ही धर्म।
नहीं समझती अपने भले-बुरेका अन्य दूसरा मर्म॥
उसकी सेवासे नित होता प्रियतमको शुचि सुख स्वच्छन्द।
इसे देखकर मिलता उसको लाखोंगुना अधिक आनन्द॥
पर निजसुख वह होता यदि प्रियतम-सुखमें बाधक क्षण एक।
तो वह उसे मानती पातक, घोर दुःख, तजती सविवेक॥
नरक-स्वर्गकी, दुःख-सुखोंकी करती नहीं कभी परवाह।
एकमात्र मन रहती बढ़ती नित प्रिय-सुखकी निर्मल चाह॥
सेवा-सुख-स्वरूप प्रियतमका बन जाता उसका शुचि रूप।
अहंरहित नित होती रहती उससे सेवा परम अनूप॥

जैसे पुष्पमें मधुका संचार केवल मधुप्रेमी मधुकरके लिये ही होता है, वैसे ही श्रीराधा जिसकी आदर्श हैं उस गोपीका—उस प्रेमी भक्तका प्रेम-रस—उस भक्तरूपी सुन्दर सुगन्धित सरोजमें संचरित प्रेम-मधु और इस प्रकारके प्रेमका अभ्युदय करनेमें निमित्त होनेवाले श्रवण-कीर्तनादि साधन भी सब प्रियतम श्रीकृष्ण-मधुकरके लिये ही होते हैं। इन सबपर उन्हींका एकान्त एकाधिकार होता है।

एक भक्त वह है, जो कर्म करके भगवान्के अर्पण करता है। ऐसे भक्तके लिये भगवान् गीता (९। २७-२८) में कहते हैं कि 'तुम जो कुछ भी खाते हो, हवन करते हो, दान करते हो, तप करते हो, कुछ भी करते हो—सब मेरे अर्पण करो। इसका फल होगा शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धनसे मुक्ति और अन्तमें मेरी (भगवान्की) प्राप्ति।'

दूसरा भक्त वह है, 'जो भगवान्की सेवाके लिये (तदर्थ) ही कर्मोंका भलीभाँति आचरण करता है, उसकी न कर्ममें आसक्ति है न फलमें—अतएव उसका कर्मोंद्वारा बन्धन होता ही नहीं।' (गीता ३। ९)

तीसरा भक्त वह है, 'जो राग-द्वेषसे सर्वथा रहित है, भगवान्के परायण है, भगवान्का ही भक्त है, वह अपना कोई कर्म करता ही नहीं, भगवान्का ही कर्म करता है।—'मत्कर्मकृत्' (गीता ११। ५५)। उसके द्वारा सहज ही सतत भगवान्की सेवा होती है।'

इस प्रकार भगवत्सेवा ही जिसके जीवनका स्वभाव-स्वरूप बन गयी है, वही प्रेमी भक्त है—वही गोपी है। गोपीके पास अपना मन नहीं है, भगवान्का मन ही उसका मन बन गया है। उसके अपने स्वतन्त्र प्राण नहीं हैं, भगवान्के प्राण ही उसे अनुप्राणित रखते हैं। उसके अपने देहसम्बन्धके सभी सम्बन्धी तथा कर्म प्रियतम भगवान्के लिये परित्यक्त हो गये हैं—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
(श्रीमद्भागवत १०। ४६। ४)

वस्तुतः उसमें सुख-दुःखका भोग करनेवाले अपने पृथक् 'अहं' का अस्तित्व ही नहीं रह जाता। भगवान्का 'स्व' उसके 'स्व'को आत्मसात् कर लेता है। अतएव उस प्रेमी भक्तका—उस गोपीका प्रत्येक विचार-आचार सब केवल भगवत्प्रीतिके लिये ही होता है। निज सुखके लिये संसारके भोगोंकी तो बात ही क्या—मुक्तितककी भी कामना उसमें नहीं रह जाती—

होता है उससे बस, केवल प्रियतमका सुख-प्रीति-विधान।
स्वयं सुखी होनेकी वाञ्छा तनिक न पाती मनमें स्थान॥

वह स्वसुख-कामना-वासनाका सर्वथा सहज त्यागी होता है।

कामके नीच-उच्च स्वरूप

विषयी मनुष्य पाप तथा नरकके बीजरूप 'विषय-भोगोंकी कामना' करता है; दिव्य भोग चाहनेवाला पुरुष वैध-पुण्यकर्म करके स्वर्गकी कामना करता है;

मुमुक्षु साधक अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा तत्त्वज्ञानरूप मोक्षकी कामना करता है और भक्त भी भक्तिके द्वारा भगवान्‌को प्रसन्न करके अपनी रुचिके अनुकूल भगवान्‌के दर्शन तथा सालोक्यादिकी कामना करता है । ये सभी एक-से-एक ऊँचे हैं । पहले पापकर्मा भोगकामीके अतिरिक्त अन्य तीनों ही—पुण्यपुरुष हैं और उनका यह 'काम' भाव अपने-अपने क्षेत्रमें सर्वथा सराहनीय और अवश्य सेवनीय है; पर श्रीराधा तथा उनके अनुयायी भक्तगण इन सभीसे आगे बढ़े हुए हैं । वे भगवान्‌से कुछ भी पानेके लिये अपनी कोई रुचि ही नहीं रखते । वे तो केवल भगवान्‌के 'लीलाक्षेत्र' बने रहते हैं । इसी त्यागमय सर्वोच्च परम प्रेमका साकार दिव्य विग्रह श्रीराधा हैं । इसीलिये नित्य, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र श्रीभगवान् प्रेमविवश हुए श्रीराधाके अधीन रहते हैं ।

नीच काम

'काम' रहेगा, तबतक होंगे 'पाप', मिलेंगे 'दुःख' अपार ।
'काम-नाश'का, देते शुभ संदेश इसीसे गीताकार* ॥

उच्च 'काम'

भौतिक सुख-ऐश्वर्य, विविध स्वर्गादि देवलोकोंके भोग—
प्राप्ति हेतु, जो होता है जीवोंका तन-मन-धन-संयोग ॥
यज्ञ-दान-तप-सेवा-पूजा-देवाराधन-पुण्याचार ।
वह भी 'काम' सुनिश्चित है; है शुद्ध, तदपि बन्धन-आधार ॥

आदर्श उच्च 'काम'

सबसे ऊँचा है वह सत्पुरुषोंद्वारा सेवित शुभ 'काम' ।
परमादर्श सफलकर जीवन शास्त्रविचार, कर्म निष्काम ॥
अन्तःकरण-शुद्धिके द्वारा देता मोक्ष-तत्त्वका ज्ञान ।
है मुमुक्षुजनका नित वाञ्छित, श्लाघ्य 'विनाशक मोहाज्ञान' ॥

सर्वोच्च 'काम'

इससे ऊँची भक्ति-'कामना' जिससे सर्वेश्वर भगवान् ।
सेवित होते नित्य, अनन्तैश्वर्य-भूति-श्री-मोद-निधान ॥
बार-बार दर्शन देते, करते जनकी रुचिके अनुसार ।
देते सालोक्यादि पञ्चविध मुक्ति सहज ही परम उदार ॥

कामनाशका उपाय और काम तथा प्रेमका भेद

'काम' सृष्टिका मूल,† काम है सहज जीवका निज संस्कार ।
अतः मिटा देना उसका अस्तित्व असम्भव-सा व्यापार ॥
कभी 'काम रिपु'का केवल बल-संयमसे होता न विनाश ।
'प्रेम'-रूप आते ही पर वह होता नष्ट, बिना आयास ॥
'काम-नाश'का इसीलिये है साधन एक नित्य अव्यर्थ—
'त्याग-विशुद्ध प्रेम'में परिणत कर दें उसे, समझकर अर्थ ॥
'प्रेम'-रूपमें परिणत हो, फिर काम नहीं रह जाता 'काम' ।
लौह स्वर्ण बन जानेपर ज्यों हो जाता है शुद्ध ललाम ॥
'काम' नित्य 'विषमिश्रित मधु' है, 'प्रेम' नित्य शुचि सुधा अनूप ।
काम 'दुःखपरिणामी' निश्चित, 'प्रेम' नित्य आनन्दस्वरूप ॥
'काम' अन्धतम प्राप्त कराता निन्दित नरक, तमोमय लोक ।
'प्रेम' ज्योतिमय रवि देता सुख, दिव्य लोक, निर्मल आलोक ॥
'काम' स्व-सुखमय, सदा चाहता विविध भोग-अपवर्ग-पदार्थ ।
'प्रेम' त्यागमय प्रियसुखकामी, मुनिवाञ्छित 'पञ्चम पुरुषार्थ' ॥

प्रेम

पर जिनमें अपनी रुचि कुछ भी नहीं, नहीं कुछ पाना शेष ।
नहीं कामना भुक्ति-मुक्तिकी, नहीं वासनाका लवलेश ॥
साधन-साध्य प्रेम-सेवा ही, त्यक्त सभी विधि काम-विचार ।
सालोक्यादि मुक्ति, दर्शन भी सेवा बिना नहीं स्वीकार ॥
वहीं त्यागमय परम प्रेम है, रसिक प्रेमियोंका आदर्श ।
परमहंस-तापस-ऋषिवाञ्छित वही सुदुर्लभ 'परमोत्कर्ष' ॥

राधा—प्रेमप्रतिमा

राधा इसी नित्य निर्मल अति त्याग-प्रेमकी केवल मूर्ति ।
परम प्रेमरूपा वह करती नित माधव-मन-इच्छा-पूर्ति ॥
नहीं 'त्याग' करती वह कुछ भी, करती नहीं कभी वह 'प्रेम' ।
स्वयं प्रतिष्ठा 'त्याग-प्रेम' की, सहज शुद्ध ज्यों निर्मल हेम ॥
उसके दिव्य प्रेम-रस-आस्वादनमें हरि नित रहते लीन ।
नित्य स्वतन्त्र, पूर्ण वे रहते प्रेमविवश राधा-आधीन ॥

वर्तमान भौतिक जगत्‌के लिये भी राधाभावके परिचय तथा प्रचारकी परमावश्यकता

मानवके गौरव तथा अभिमानके प्रतीक वर्तमान

* 'गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्ण'— देखिये गीता, तृतीय अध्यायका अन्तिम अंश—

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥

† पहले एक वह आत्मा ही था, उसने कामना की ।
आत्मैवेदमग्र आसीदेक एव सोऽकामयत । ××
(बृहदारण्यक० ३ । १ । १)

विज्ञानके विकास-द्युति-सम्पन्न स्वर्णयुगमें अथवा आध्यात्मिक दृष्टिसे प्रायः सर्वत्र विस्तृत तमोमय घोर अज्ञानके युगमें, जिसमें प्रतिक्षण वर्धमान, नित्य अतृप्त भोगलिप्साके प्रभाव तथा मानवोचित त्यागके अभावसे मनुष्य असुर बन गया है——मानवके कर्तव्यपर गम्भीर विचार करना परमावश्यक है। यदि इस पतनके प्रवाहकी गति नहीं रुकी तो पता नहीं, विश्वमानव कितने दीर्घकालके लिये, कितने घोर अन्धकार-गर्तमें गिरनेको बाध्य होगा।

जलकी धारा जबतक प्रवाहित रहती है, उसका गंदापन नष्ट होकर उसका वह जल निर्मल, शुद्ध बनता चला जाता है; परंतु शुद्ध जल भी यदि एक गड्ढेमें भरकर बंद कर दिया जाता है तो वह अत्यन्त मलिन हो जाता है, सड़कर वह गंदे कीड़ोंकी विहार-स्थली बन जाता है और नाना प्रकारके रोग-विस्तारमें कारण बनता है। इसी प्रकार जबतक सर्वलोककल्याणकारिणी भारतीय आर्य-संस्कृतिके अनुसार मानवकी जीवनधारा——विचार-कर्मधारा अपने 'अहं'को अखिल विश्वप्राणियोंके 'अहं'में मिलाकर——अपने 'स्व'को सबमें देखकर सबके सुख-हित-सम्पादनमें अखण्डरूपसे प्रवाहित थी, तबतक सबका कल्याण ही अपना कल्याण समझा जाता था तथा सर्वहितकारी विचार एवं क्रियाकलाप चलते थे। परंतु जबसे मानवका 'स्व' छोटेसे सीमाबद्ध दायरेमें रुककर संकुचित और सीमित हो गया है, तबसे वह गड्ढेके इकट्ठे हुए सड़े जलकी भाँति दूषित हो गया है। इसीसे उस 'स्व'का अभिलषित 'अर्थ'——'स्वार्थ' भी बहुत ही संकुचित होकर अत्यन्त निम्नस्तरपर आ गया। इसी नीच स्वार्थके कारण सर्वत्र त्यागका अभाव बढ़ता जा रहा है और मनुष्य विभिन्न कारणोंकी उद्भावना करके परस्पर एक-दूसरेका शत्रु बनकर अपने ही विनाशपर तुल गया है। आज केवल राजनीति ही नहीं, प्रायः सभी क्षेत्रोंमें——हमारा ही नहीं, व्यक्तिगत जीवनसे समस्त विश्वगत मानव-जीवन प्रायः इसी विनाशकी भयानक भूमिपर आ गया है। इसीलिये लोककल्याणकारी विज्ञानका भी मानवकी विपरीतदर्शिनी तामसी बुद्धिके कारण अवाञ्छनीय जन-विध्वंसकारी उद्दण्ड प्रलय-काण्डोंमें प्रयोग किया जा रहा है। ऐसे दुस्समयमें त्यागकी महिमा बतलानेवाले साधनकी——त्यागमय पवित्र चरित्रके अध्ययन, परिचय, दर्शन और तदनुरूप जीवन-निर्माणके पुनीत कार्यकी बड़ी आवश्यकता है।

आध्यात्मिक जगत्के साधन-क्षेत्रमें तो सर्वोच्च साधनपदपर समारूढ़ तीव्र मुमुक्षु——मोक्षकामी पुरुष भी बन्धनमुक्तिके स्वार्थवश मोक्षकी कामना करता है। यद्यपि यह कामना कामना नहीं मानी जाती, यह त्याज्य नहीं, वरं बड़े पुण्यफलोंसे प्राप्त, आदरणीय और वरणीय है, तथापि स्वार्थत्यागकी अत्युच्च भूमिकापर पहुँचनेके लिये इस कामनाका त्याग भी परमावश्यक है। इसके लिये भी ऐसे पुनीत चरित तथा परम पावन साधनके परिचयकी अनिवार्य आवश्यकता है। ऐसा त्यागमय जीवन सर्वत्यागमयी 'श्रीराधाजी'का है और इस प्रकारका साधन स्व-सुख-वाञ्छा-कल्पना-लेशगन्धसे शून्य पवित्रतम 'प्रेम' है।

श्रीराधाजीके तथा श्रीगोपाङ्गनाओंके पुनीत चरितमें इसी परम त्यागमय पुनीत साधन तथा साध्य-स्वरूपके दर्शन प्राप्त होते हैं। अतएव उसका गम्भीर हृदयसे संयतेन्द्रिय होकर जितना भी स्मरण-चिन्तन-मनन किया जाय, उतना ही मङ्गल है।

प्रेम सीमित 'स्व'-रूपको तथा अपने सीमित स्वार्थको भुलाकर प्रेमास्पदके अखण्ड स्मरण तथा उसीके सुख-हित-सम्पादनरूप स्वार्थमें अपनेको खो देता है, परंतु इतनेपर भी न अभिमान करता है, न अहसान। आजका मानव यदि यह पाठ सीख ले तो वह सच्चा धर्मभक्त, जातिभक्त, देशभक्त, विश्वभक्त या विश्वमय प्रभुका

अनन्य भक्त बन सकता है। पर इसके अभावमें आज मनुष्य धर्म, जाति, देश, विश्व तथा विश्वात्मा भगवान्‌को भूलकर अपने कल्पित तथा सीमित नाम-रूपके सेवन तथा सुख-हित-सम्पादनमें लगा है, जिसका परिणाम पतन और विनाश है। इसीलिये प्रेम-साधनकी आवश्यकता है। इस प्रेम-साधनमें संलग्न होनेके लिये मनुष्यको बनना है—सच्चा प्रेमी। अर्थात् एकमात्र प्रेमास्पदको सुखका—सेव्य-सुखका विषय तथा अपनेको एकमात्र उसके सुखका सेवक—या सुखका आश्रय बना लेना। इसके लिये राधा-चरित्रके, राधा-जीवनके स्मरणकी, राधाके त्यागमय आदर्श-जीवनके अध्ययनकी आवश्यकता है। इसीलिये इस प्राचीन परम्परागत राधा-प्राकट्य-महोत्सवको नवीन रूपमें मनानेका यह क्षुद्र प्रयास है। अभी तो केवल विचारमात्र ही है, प्रयासका प्रारम्भ नहीं हुआ है। ऐसे प्रयासके लिये राधा-जीवनसे परिचित तथा उसमें श्रद्धा-सम्पन्न प्रयास करनेवालोंकी आवश्यकता है। अभी तो न रङ्गमञ्च है और न अभिनेता ही। केवल बाह्य विचारमात्र है। श्रीराधा इस अभावकी पूर्ति करेंगी, तभी कुछ होगा। तबतक इस उत्सवसे जो कुछ सद्भावना प्राप्त होती है, वही एक परम लाभकी वस्तु है। श्रीराधाचरितको समझनेके लिये तपस्या तथा संयमकी तो आवश्यकता है ही, बार-बार उनके चरित्रको गम्भीरतासे हृदयंगम करना भी अत्यन्त प्रयोजनीय है।

श्रीराधाका परिचय तथा पूजन

मेरी उन श्रीराधाजीने कृपापरवश होकर मुझको अपने स्वरूपका जो कुछ परिचय कराया, उसका मोटा रूप यह है—

मेरी आराध्या राधाका स्वरूप-तत्त्व

राधारानी देतीं प्रियको पल-पल नया-नया आनन्द।
उस आनँदसे शत-शतगुण आनन्द प्राप्त करतीं स्वच्छन्द॥
तन-मन-धन-जीवन-मति-गति, सब वस्तु; कर्म-आचार-विचार।
प्रियतमके सब सहज समर्पित नित सुख-सेवा-रत, अविकार॥
किंतु न रहता उन्हें कभी भी अपने देनेका कुछ भान।
कभी न आता उनके मनमें निज कृतिका किंचित् अभिमान॥
रागरहित शृङ्गार विलक्षण, भोगरहित नित भोग महान्।
प्रियतम-सुखहित दैन्ययुक्त सब हैं, अभिमानरहित अतिमान॥
निज सुख-वाञ्छा-विरहित ममता, नित विरागमय प्रिय-आसक्ति।
भोजन-पान स्वादविरहित निज, प्रिय-सुख-हेतु मुक्त अनुरक्ति॥
मलिन काम-तमका न कभी हो पाता उनमें लेश-प्रवेश।
रहता नित्य प्रकाशित शुचितम दिव्य ज्योतिमय प्रेम-दिनेश॥
संयमपूर्ण सहज चलते नित देह-गेहके सब व्यवहार।
वे भी सब प्रिय-सुख-साधन ही होते, निजको सदा बिसार॥
अतुलनीय सौन्दर्य-शील, सद्गुण, स्वभाव, सद्भाव, सुरूप।
मेरी राधाके ये कृष्णाकर्षी पावन दिव्य अनूप॥
नित्य सेविका वे प्रियतमकी, विनय-विनम्र सहज मन-दीन।
कहतीं, सदा मानतीं निजको दुर्लभ श्याम-प्रेम-धन-हीन॥
किंतु श्याम नित रीझे रहते, करते नित नूतन मनुहार।
परमाराध्य मानते, निर्मल मनसे प्रियतम नन्दकुमार॥

इसके एक-एक शब्दपर तथा उसके अर्थपर ध्यान दीजिये और तदनुसार अपना जीवननिर्माण करनेका सत्प्रयास श्रीराधा-माधवके अनुग्रह-बलके आधारपर ही अत्यन्त दीनताके साथ कीजिये। श्रीराधाके इस भावपर सदा खूब लक्ष्य रखिये—'राधा कभी भी अपनेमें प्रेम या कोई गुण नहीं देखतीं, वे सदा ही अपनेमें अशेष त्रुटियोंके—दोषोंके दर्शन करती हैं और अपनेको सेवाके अयोग्य मानती हुई भी निरन्तर प्रियतमके उदार रसमय हृदयकी वदान्यताके भरोसे उन्हींको एकमात्र जीवनका परमाराध्य मानकर उनकी अहर्निश पूजा किया करती हैं। उनकी पूजा-आराधना-अर्चनामें कभी विराम नहीं आता। वह चलती रहती है और चलती ही रहेगी।' इस प्रकारके परम श्रेष्ठ परम त्यागमय जीवन-दर्शनसे युक्त श्रीराधाका,—जो भगवान्‌की अभिन्नस्वरूपा होनेपर भी भगवान्‌की नित्य आराधिका बनकर परम प्रेमका अनुष्ठान करती हैं और उससे सहज ही हमारे सामने एक परमोज्ज्वल आदर्श उदाहरण उपस्थित हो जाता है,—हमें नित्य निरन्तर पूजन-आराधन भक्तिपूर्वक करना

चाहिये। इससे उनके प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णकी हम-पर कृपा-सुधा-धारा अनायास अनवरतरूपसे बरसने लगेगी। भगवान् श्रीकृष्णने भगवान् शिवसे कहा है—

सकृदावां प्रपन्नो वा मत्प्रियामेकिकां सुत।
सेवतेऽनन्यभावेन स मामेति न संशयः॥
यो मामेव प्रपन्नश्च मत्प्रियां न महेश्वर!।
न कदापि स चाप्नोति मामेवं ते मयोदितम्॥
सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति वदेदपि।
साधनेन विनाप्येव मामाप्नोति न संशयः॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मत्प्रियां शरणं व्रजेत्।
आश्रित्य मत्प्रियां रुद्र! मां वशीकर्तुमर्हसि॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड ८२। ८३—८६)

"वत्स! जो व्यक्ति केवल एक बार हम दोनोंकी शरणमें आकर अथवा एकमात्र मेरी प्रिया (श्रीराधा) की ही शरणमें आकर उनकी अनन्य भावसे सेवा करता है, वह निस्संदेह मुझको प्राप्त होता है। महेश्वर! इसके विपरीत जो केवल मेरी शरण आ गया है पर मेरी प्रियाकी शरण नहीं आया, वह मुझको कभी प्राप्त नहीं होगा—यह मैं सत्य कहता हूँ। जो व्यक्ति एक बार भी हमलोगोंके शरण आकर 'मैं तुमलोगोंका हूँ' यों कह देता है, वह बिना ही साधन मुझको प्राप्त होता है—इसमें कोई संदेह नहीं है। अतएव सब प्रकारसे प्रयत्न करके मेरी प्रियतमा राधाकी शरण ग्रहण करे। हे रुद्र! यदि मुझे वशमें करना चाहते हो तो मेरी प्रियतमा (राधा) का आश्रय ग्रहण करो।"

इसी प्रकार श्रीराधाकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये उनके नित्य परमाराध्य प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णके अनन्यशरण होकर उनकी उपासना-आराधना करनी चाहिये। जो श्रीराधाजीकी तो उपासना करता है, पर श्रीकृष्णकी अवहेलना करता है, उसपर श्रीराधाजी प्रसन्न नहीं होतीं।

अतएव साधकोंको सच्चे मनसे श्रीराधाके नित्य परमाराध्य भगवान् श्रीकृष्णकी और श्रीकृष्णकी आत्मरूपा परमप्रिया श्रीराधाजीकी उपासना करनी चाहिये। अभिप्राय यह कि युगलस्वरूपकी उपासना-आराधना करनी चाहिये।

पर इस प्रेमराज्यके साधनमें त्यागकी बहुत बड़ी तथा अनिवार्य आवश्यकता है। कहीं श्रीराधाप्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णसे तथा उनकी प्राणेश्वरी श्रीराधासे कुछ सुख प्राप्त करनेकी वासना न जाग उठे, इससे हमें सर्वथा तथा सर्वतोमुखी त्यागमूर्ति 'मञ्जरी'रूपसे उपासना करके—उत्तरोत्तर दिव्य प्रलोभनोंकी बहुलतामें भी परम त्यागके तपस्यापूर्ण पवित्र आदर्शपर दृढ़ रहते हुए श्रीराधा-माधवको प्रसन्न करनेका प्रयास करना चाहिये।

आज श्रीराधा-जन्माष्टमी-महोत्सवका महान् पवित्र पर्वदिवस है। हमलोग श्रीराधामाधवसे प्रार्थना करें कि वे हमपर अपनी सहज कृपाकी वर्षा करें, जिससे हमलोग लोक-परलोक तथा दिव्य भोग-मोक्षके प्रलोभनोंसे बचकर उनकी प्रेमरसमयी सेवा करनेका सुअवसर तथा सौभाग्य प्राप्त कर सकें।

प्रार्थना

श्रीराधामाधव कर हमपर सहज कृपावर्षा भगवान्—
ठुकरा सकें सभी भोगोंको जिससे, दें यह शुभवरदान॥
सहज त्याग दें लोक और परलोकोंके हम सारे भोग।
लुभा सकें न दिव्य लोकोंके भोग, मोक्षका शुचि संयोग॥
बने रहें हम रस-निकुञ्जकी क्षुद्र मञ्जरी सेवारूप।
सखी-दासियोंकी दासी अतिशय नगण्य, अति दीन अनूप॥
पड़ती रहे सदा हमपर उन सखि-मञ्जरियोंकी पद-धूल।
करती रहे कृतार्थ, बनाती रहे हमें सेवा-अनुकूल॥

बोलो श्रीकृष्णवल्लभा श्रीराधारानी तथा उनके परमाराध्य श्रीकृष्णकी जय जय!!

क्या धन सफलता है ?

(लेखक—श्रीजी० आर० जोशियर एम्० ए०)

वह अपने पुरुषार्थके बलपर बना हुआ एक धनी व्यक्ति था। पूर्णतया स्वस्थ था तथा जीवनको जीनेके योग्य बनानेवाली प्रत्येक वस्तु उसे उपलब्ध है, यह भी प्रतीत होता था तो भी उसने आत्महत्या कर ली।

उसने अपनी विदाईकी विज्ञप्तिमें कहा कि मैं नितान्त असफलताका अनुभव करता हूँ। उसका वास्तविक अभिप्राय था कि प्रचुर साधन-सामग्रियोंपर उसका स्वामित्व होनेपर भी उन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु 'मनःशान्ति'से वह वञ्चित था, जिसके अभावमें जीवनमें कोई आनन्द नहीं है।

उसीके समान और भी बहुत लोग हैं। मैं एक ऐसे व्यक्तिको जानता हूँ कि जिसके पास प्रारम्भमें कुछ भी नहीं था और अपने जीवनके चालीस वर्ष होते-होते उसके पास अनाप-शनाप धन इकट्ठा हो गया। दूसरे लोग ईर्ष्यावश कहा करते थे कि 'लड़का भाग्यवान् है।'

परंतु क्या वस्तुतः ऐसी ही बात थी ?

जागनेकी स्थितिमें उसका प्रत्येक क्षण चिन्तामें तथा उसके अपने प्रचुर धनभण्डारमें और भी अधिक वृद्धिकी योजनाएँ बनानेमें ही बीतता था। उसपर इसी धुनका भूत सवार था, जिसने उसे लगभग उन्मादकी-सी स्थिति तक पहुँचा दिया था। इसके अतिरिक्त उसे किसी अन्य बातका ध्यान नहीं था। मित्र, परिवार, आराम-जैसी जनसाधारणको सुलभ छोटी-छोटी प्रसन्नताओंके लिये भी वह समय नहीं निकाल पाता था, धन उसका इष्ट तथा वह स्वयं उसका श्रद्धालु और नियमित उपासक था।

इसीके कारण उसकी पत्नीने उसका परित्याग कर दिया तथा उसकी लड़कीने एक अनुपयुक्त और दुर्भाग्यपूर्ण विवाह कर लिया। अब वह जीवनके आखिरी वर्षोंमें अकेला है तथा उसका जीवन कटुतापूर्ण है। उसकी पहचान तो बहुत लोगोंसे है, परंतु उसका मित्र एक भी नहीं। वह निःसंदेह अब भी रुपये कमाता है और दुनियाकी आँखोंमें एक चतुर तथा सफल व्यक्ति है। परंतु उसकी यह तथाकथित सफलता उपहासमात्र है।

तो क्या यही स्थिति सफलता कहलाती है ? कारें, मोटर-गाड़ियाँ, केलि-जलवाहन पोत (आमोदप्रमोद तथा विलासपूर्ण सागरयात्राके उपयोगमें आनेवाले छोटे समुद्री जहाज), भव्य भवन और बैंकमें संरक्षित विशाल धन-राशि—ये किसी भी प्रकारसे जीवन-यापनके निमित्त संघर्ष करनेवालोंके लिये सफलताके चिह्न माने जा सकते हैं। परंतु ये सब केवल साधारण व्यक्तिकी पहुँचके बाहरकी समृद्धिके सूचकमात्र हैं—और 'समृद्धि' तथा 'सफलता' सदैव ही एक वस्तु नहीं है।

मेरे एक मित्रको उसीके व्यवसायक्षेत्रसे सम्बन्धित अन्य व्यक्तिने उसके साथ उसके केलिपोतपर सप्ताह भर साथमें गुजारनेके लिये कहा। इस निमन्त्रणका हेतु कोई मैत्री अथवा परोपकारकी वृत्ति कदापि नहीं थी। उस केलिपोतके स्वामीको यह आशा थी कि उसका मेहमान उसके एक विशेष व्यापारिक सौदा करनेमें सहायक हो सकता है।

मेरे परिचित मित्रने बादमें मुझसे कहा कि 'इस प्रकारका हेय तथा खिन्नतासे भरा हुआ समय उसे इसके पूर्व कभी भी नहीं बिताना पड़ा। ऋतु भी बहुत उत्तम थी। व्यवस्था प्रशंसनीय थी। यह छोटे रूपमें एक विलासमयी सुखद समुद्री यात्रा कही जा सकती थी—परंतु''' इतना कहकर उसने उद्विग्नताके साथ अपने सिरको झटक दिया।

उसने अपना कथन पुनः जारी किया। 'मुझे निमन्त्रित करनेवाले महानुभाव जो कुछ भी बातचीत करते थे, वह सारी चर्चा केवल धन या रुपयेसे सम्बन्धित थी।' उसने उसे स्पष्ट करते हुए कहा कि 'वे किसी प्रकार यहाँ कुछ हजार रुपये कमा सकते हैं।' उनकी दृष्टिमें और किसी भी वस्तुका कोई महत्त्व ही नहीं प्रतीत होता था। यह सब कुछ बड़ा दुःखद तथा घबरा देनेवाला था।

ये सब उदाहरण उस पुरानी कहावतकी पुष्टि करते हुए प्रतीत होते हैं कि धन सदैव प्रसन्नताका ही आश्वासन नहीं देता। यह सत्य है कि हमारी इस उलझी हुई आजकी दुनियामें रुपयेकी भी समुचित मात्रा आवश्यक है; परंतु किसी व्यक्तिका अपनी सारी शक्तिको धन कमानेके लिये लगा देना इससे सर्वथा भिन्न है।

एक अंग्रेज विधिविशेषज्ञने यथासमय इस बातका अनुभव किया कि धनकी सफलता ही सब कुछ नहीं है और यों विचारकर उसने खेतमें दिनके १२ घंटेतक काम करनेके लिये अपने बहुत ही अधिक लाभदायी कार्यका परित्याग कर दिया। बादमें उसने अपना निजी खेत खरीद लिया तथा वह सदैवकी अपेक्षा अधिक श्रम करने लगा। परंतु अब वह सदा कानूनी समस्याओंको सुलझानेवाले एक सफल वकीलसे कहीं अधिक सुखी था।

इस घटनाने मुझे एक अन्य व्यवसायी व्यक्तिकी स्मृति दिला दी है। वह लन्दनमें एक लेखापरीक्षक (Chartered Accountant) था। उसकी आय व्यवसायमें सर्वाधिक ३००० थी। उसने मुझे हालमें बताया कि 'हर व्यक्ति मुझे सफल तथा भाग्यवान् मनुष्य समझता था', परंतु अचानक ही मुझे अनुभव हुआ कि यह सब वाञ्छनीय नहीं है। 'आँकड़े तथा रुपया (जिसे वह अपने साथ लाता था) मेरे जीवनके शासक बन बैठे थे। मैं अपने कार्यालयसे पुस्तकों तथा फाइलोंके ढेर घरपर लाया करता था और उनपर आधी-आधी राततक काम किया करता था। यही मुझे चबाये जा रहा था—और मेरी पत्नी लगभग पागल हो चुकी थी तथा हम दोनों एक दूसरेसे दूर होते जा रहे थे।'

उन्होंने एक उल्लेखनीय मौलिक ढंगसे अपनी समस्याका हल खोज निकाला। वे एक धनी कुँवारेके खानसामा तथा शोफर बन गये और उनकी पत्नी भोजन बनानेका काम करने लगी। आर्थिक दृष्टिसे निस्संदेह वे पहलेकी अपेक्षा कुछ बुरी दशामें अवश्य थे; परंतु शारीरिक तथा मानसिक दृष्टिसे इतने स्वस्थ तथा चिन्तामुक्त इसके पूर्व वे कभी भी नहीं थे।

इस सबसे क्या शिक्षा मिलती है ? किसी भी व्यक्तिको धनका ही महत्त्वाकाङ्क्षी नहीं होना चाहिये। थोड़ा भी नहीं। कम-से-कम ऐसी महत्त्वाकाङ्क्षाके उन्मादको सिरपर सवार मत होने दीजिये; क्योंकि अकेला धन सच्ची सफलताका प्रतीक कदापि नहीं है। आप वर्षमें दो-चार सौ रुपयोंसे ही सफल बन सकते हैं और उनसे कई गुना अधिक होनेपर भी असफल रह सकते हैं।

उस प्रकारकी जीवनवृत्तिकी दासता स्वीकार करनेमें क्या तुक है जो हमें प्रतिदिन नगरके सर्वोत्तम रेस्टोरेन्टमें भोजन करनेमें तो सक्षम बनाये, परंतु यह करते समय हमारे पेटका इस सीमातक सत्यानाश हो जाय कि हम साधारण भोजनके आनन्दसे भी वञ्चित हो जायँ।

पुराने जमानेके एक लेखकने बहुत ही सुन्दर ढंगसे यही बात कही है कि 'वही सफल है जो अच्छी प्रकारसे जिया, सदैव हँसता रहा और जिसने खूब प्यार किया। (He has achieved success who has lived well laughed often and loved much !)'

तथाकथित सफल व्यक्तियोंमेंसे कितने इस मापदण्ड-पर खरे उतर सकते हैं ? (रैशनेलिस्ट)

करुणासागरसे प्रार्थना

मत निराश हो, मत घबरा रे ! मत कर मनमें जरा विषाद।
जा चरणोंमें सहज सुहृदके, पा ले उनका कृपा-प्रसाद॥
दीनोंको अपनाना—सुखी बनाना उनका सहज स्वभाव।
पतितोंको पावन करनेका उनके मन रहता नित चाव॥
रो-रोकर कह दयासिन्धुसे, करो नाथ ! मेरा उद्धार।
हरो दुःख-दुर्भाग्य-दोष-दुष्कर्म दुष्ट-आग्रह, कुविचार॥
त्रिविधताप-हर हर लेंगे हरि सुनते ही तेरा चीत्कार।
तुझे स्थान देंगे निज दासोंमें वे करुणा-पारावार॥

दान

[कहानी]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

वन्दे वन्दारुमन्दारमिन्दुभूषणनन्दनम् ।
अमन्दानन्दसंदोहबन्धुरं सिन्धुराननम् ॥

जो प्रणाम करनेवाले भक्तजनोंके लिये कल्पवृक्ष हैं, जो चन्द्रभूषण महादेवके पुत्र हैं और जो अपार आनन्दके समूहसे भरे हैं, उन हाथी-जैसे मुखवाले गणपतिको मैं प्रणाम करता हूँ।

उपर्युक्त श्रीगणेश-वन्दना करते हुए साहु मदनजी मोटरसे उतर स्टेशनके अंदर आये। उन्हें पुष्पमालाएँ पहनानेवालोंकी भीड़ उमड़ आयी। इतनेहीमें अंधा भिक्षुक सुरपाल उनसे टकरा गया। बड़े क्रोधित हुए वे।

वृद्ध, अंधे, कृशकाय सुरपाल याचकको एक लड़का उसकी लकड़ी पकड़े हुए उसे डिब्बोंमें बैठे यात्रियोंसे भिक्षा माँगनेको ले जा रहा था। सुरपाल हाथ पसारे कहता था—'दें जिनका भी भला, न दें उनका भी भला।' अचानक वह साहुसे टकराकर हाथ जोड़ विनीत भावसे कहने लगा—'भला हो, सेठ साहब आपका। मैं दीन, अंधा भिक्षुक हूँ। मुझसे बड़ा अपराध हुआ, क्षमा कर दें।' यह कहते हुए उसने अपना कटोरा साहुकी ओर बढ़ा दिया। उसमें यात्रियोंके दिये कुछ पैसे थे। साहु पैसे और अंधेको देखकर गुर्राये। साथियोंसे वार्तालाप चालू था, इसलिये अंधेसे कोई अपशब्द कहते लजा गये और उसे कुछ न देकर प्रथम श्रेणीके रिजर्व डिब्बेमें जा बैठे। गाड़ी चल दी।

चिन्तन चला उनका—अभी मैं संत अनन्तदासजीके उपदेशामृत पान करते आया हूँ। उन्होंने कहा था—'सब जीवोंपर दया करो। वृक्ष-लता, कीट-पतंग, पशु-पक्षी, मानव—सबपर दया करो। किसीके भी मनको क्लेश मत पहुँचाओ। भगवत्स्मरण करनेमें २४ घंटोंमें एक श्वास-प्रश्वास भी वृथा न जाय।' मैं अंधे भिक्षुककी अभी-अभी उपेक्षा करके इतना जल्दी उपदेशामृतको भूल गया! भगवान्‌की दयासे घरमें धर्मकी कमाईका बहुत-सा धन है, व्यापार-धंधेमें निरन्तर लाभ होता जा रहा है। उसमेंसे आज यदि मैं कुछ पैसे उस अंधेको दे देता तो मेरे धनमें क्या कमी हो जाती, पर वह तो कुटुम्बका पालन कर पाता। कहा है—

गज मुख तें कणिका गिरयो, घट्यो न ताको आहार।
ताहि पिपीलिका लै चली, पालन निज परिवार॥

नावमें पानी भर जाने और घरमें धन बढ़ जानेपर यदि उसे दोनों हाथोंसे उलीचनेकी बुद्धिमानीका काम नहीं किया तो प्रायः देखा जाता है कि कृपण पुरुषोंको धनसे कभी सुख नहीं मिलता। इस लोकमें तो वे आठों पहर धन कमाने और उसकी रक्षाकी चिन्तासे जलते रहते हैं और मृत्यु हो जानेपर धर्मके अभाव और पापसञ्चयके कारण नरकमें जाते हैं।* मैंने बड़ा अनर्थ कर डाला आज। उस बेचारे अंधे कृशकाय याचकको कुछ देना तो दूर रहा, उसके जरा-से धक्केसे मैं इतना क्रोधित हो गया कि वह वैरी क्रोध अभीतक मेरे तन-मनसे नहीं जा रहा है। मेरी कृपणता प्रकट हो गयी। अभी वह अगले स्टेशनपर मिल जाय, तो उसे कुछ धन देकर प्रसन्न कर दूँ। बड़े लोग तो वे ही होते हैं, जो गरीबका हित करते हैं। कहा है—

जे गरीब पै हित करैं, ते 'रहीम' बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग॥

साहुजीका सद्विवेक जाग उठा था। पश्चात्ताप-पूरित उनके उपर्युक्त सात्त्विक चिन्तनको रेलकी गतिका

---

* प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन।
इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च॥
(श्रीमद्भागवत ११। २३। १५)

घर्राटा सहयोग दे रहा था, मानो गीतको वाद्ययन्त्र सहायता दे रहे हों।

(२)

गाजीपुर पहुँचकर साहु मदनजीने अपने प्रतिष्ठानका कार्य देखा। दान-पुण्यका खाता देखकर आदेश दिया कि 'इस मदमें अधिक निधि प्रतिवर्ष व्यय किया करो। याचकोंको आटा, दाल, नमक-मिर्च-मसाला देते रहनेका प्रवन्ध रहे।' तदनुसार ही होने लगा।

वापस लौटते समय वे गाड़ीमें ही नित्य कर्मसे निवृत्त हो दर्पणमें अपने मुखको देखते हुए कंघेसे बालोंको सँवारने लगे। इतनेमें ही स्टेशन आ गया और वहाँ उनके कानोंमें दैवात् यह ध्वनि सुनायी पड़ी—

तेरे राम नाम नहिं तनमें, मुखड़ा क्या देखे दरपनमें।

उन्होंने खिड़कीद्वारा झाँककर अंधे सुरपालकी याद करते हुए देखा तो वह नहीं, एक हृष्ट-पुष्ट याचक खँजरीपर यह गीत गाकर यात्रियोंसे पैसे माँग रहा था। निराश हुए वे।

साहुजी वापस आये ललितपुर स्टेशनपर। गाड़ीसे उतरते समय दैवयोगसे वही सुरपाल भिखारी फिर उनका धक्का लगनेसे गिर पड़ा। फिर भी उसने साहुजीसे क्षमा-याचना करते हुए उनकी हित-कामना प्रकट की। साहु मदनजी अव वे नहीं रह गये थे, जो धन-मान और क्रोधके वशमें उस दिन थे; क्योंकि पाँच दिनके प्रवासमें पश्चात्तापका निरन्तर चिन्तन चलते रहनेसे उनका मन निर्मल हो गया था। उनके मनमें उसके प्रति आदरका भाव जाग उठा था; क्योंकि वे सोचते थे कि इसीके कारण मेरी आँखें खुलीं और पश्चात्तापकी आगने मुझे पवित्र बनाया। अतः वे अंधेको उठाकर उसे अङ्कमें भरते हुए बोले—'आप तो संतके समान हैं। मेरी ही भारी भूल हुई जो मैंने धक्केसे आपको गिरा दिया। चलो मेरे घरपर। यहाँ माँगना छोड़ो। इस बालककी शिक्षाका प्रवन्ध कर दूँगा और आपको आरामसे रक्खूँगा।'

यह सुनकर सुरपाल सोचने लगा कि 'क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ। उसने जानेसे बहुत इन्कार किया, किंतु मदनजी नहीं माने। उन्होंने बालकसे अंधेकी लकड़ी अपने हाथमें ले ली और दोनोंको साथ लेकर अपनी मोटरमें अपने पास ही बैठाकर अपने भवन 'मदनकुंज' में ले आये। स्टेशनपर सैकड़ों यात्री इस दृश्यको देखते ही रह गये। इसे पूर्वजन्मके संस्कार मानकर सभी आश्चर्यचकित हो गये।

अपने हरे-भरे बागमें सुरपालको एक आरामदेह कोठेमें ठहराते हुए मदनजीने एक सेवकको उसे सभी तरहका आराम पहुँचानेके हेतु नियत कर दिया। सुरपाल भगवान्की अहैतुकी कृपा समझ रात-दिन भगवान्की विविध लीलाओंके भजन खँजरी बजाकर गाया करता, जिससे पड़ोसतक गूँजता रहता था।

लाठीवाला लड़का शिक्षित होकर मदनजीके प्रयत्नसे समयपर स्कूलमें व्याख्याता बन गया। दोनों मदनजीके भरे-पूरे परिवारमें समानके सदस्य समझे जाने लगे।

सुरपालके इच्छानुसार मदनजीने अपने धनका सदुपयोग करते हुए अनाथालयका एक विशाल भवन निर्माण करा दिया। उसमें खोज-खोजकर अनाथोंको लाकर रक्खा गया। अनाथालयका प्रबन्ध एक ट्रस्टके द्वारा होने लगा।

अपने द्वारा यह परोपकारका कार्य सम्पन्न होता देखकर मदनजी बार-बार भगवान्को धन्यवाद देते और नित्य नियमसे भजन करते हुए आनन्दकन्दके चित्रके सम्मुख भक्तिभावसे नतमस्तक होकर अश्रु बहाया करते कि 'हे भगवन्! आपने मुझे सद्बुद्धि देकर धनका सदुपयोग करवाया।' अब मदनजीको हरिभजन करनेका चस्का लग गया। वे खंजरीपर सुरपालसे भगवान्की विविध लीलाओंके भजन सुनते और स्वयं भी भाव-विभोर होकर भजन गाते-गाते नृत्य करने लगते। उनका सारा जीवन इसी प्रकार व्यतीत हुआ। दूर-दूरतक उनका भजनानन्दी सेठ नाम प्रसिद्ध हो गया। पड़ोस, नगर, खुदका परिवार और घरके लोग उनके हरि-कीर्तनसे प्रभावित होकर भजन-परायण बन गये।

गोस्वामी तुलसीदासकी शिव-भक्ति

(लेखक—श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल)

भारतीय जनतामें राम और कृष्णके समान शिव भी अत्यन्त लोकप्रिय आराध्य हैं। कुछ प्रदेशोंमें शिव राम और कृष्णसे भी अधिक लोकप्रिय देव हैं। शिवका इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। एक सम्पूर्ण पुराण 'शिव' से सम्बन्धित है (शिवपुराण); वैदिक साहित्यमें (स्वयं ऋग्वेदमें) रुद्र एक महत्त्वपूर्ण देव हैं, जिनसे सम्बन्धित अनेक सूक्त हैं और मोहन-जो-दड़ोकी खुदाई तथा अन्य प्राचीन अवशेषों एवं ऐतिहासिक उपकरणोंमें शिवकी पूजाके प्रचुर प्रमाण प्राप्त होते हैं। विश्वकवि कालिदासकी सुप्रसिद्ध रचना 'कुमार-सम्भव' शिवके चरितका ही महाकाव्य है, जिसमें पार्वतीका अनिर्वचनीय सौन्दर्य और सौन्दर्यकी अनिर्वचनीय शक्तिका उज्ज्वल उद्भास हुआ है। भारविका 'किरातार्जुनीयम्' भी शिवचरितका ही काव्य है, जिसमें संसारके श्रेष्ठ धनुर्धर गाण्डीव-धारी अर्जुनसे किरातवेश शिवके शस्त्र-संघर्षका वर्णन है। हिंदी साहित्यमें गोस्वामी तुलसीदासजीने रामके साथ ही अपनी पावन काव्य-मन्दाकिनीद्वारा शिवका भी रम्य अभिषेक किया है और वैष्णव-शैव-भक्तिका सामञ्जस्य-समन्वय करनेके साथ-साथ शिवको भारतीय जन-मानसमें विराजमान करा दिया है।

भगवान् शिव रामके बाद गोस्वामी तुलसीदासके द्वितीय-आराध्य हैं। उनके साहित्यमें श्रीकृष्णको उतनी मान्यता नहीं मिली है, जितनी शिवको। कृष्णपर केवल एक छोटेसे काव्यकी रचना हुई है, 'कृष्णगीतावली', जब कि शिव-पार्वतीपर 'पार्वती-मंगल' के अतिरिक्त अन्य अनेक रचनाओंमें कविके शक्तिशाली रमणीय उद्गार व्यक्त हुए हैं। इस शिवसम्बन्धी कवितामें रामके समान ही शिवकी भी शोभा, शक्ति और शीलका निरूपण हुआ है, जिसके आधारपर रामके समान ही शिवकी भक्तिको भी लोकहृदयमें प्रज्वलित कर देनेमें गोस्वामीजी सफल हुए हैं। शिवके प्रति उनके इस महान् अनुरागके कारण आध्यात्मिक भी थे और सांस्कृतिक भी। शिवकी नगरी काशीमें गोस्वामीजीका जितना जीवन व्यतीत हुआ था, उतना अयोध्या (रामकी पुरी), चित्रकूट (रामका दर्शनस्थल), राजापुर (गोस्वामीजीकी जन्मभूमि) और सोरों (कविकी शिक्षा-भूमि) में भी नहीं हुआ था। अतः शिवकी आराधनाके स्वर कविके गहरे अन्तःप्रदेशोंसे निकलकर आये हैं।

शिव-सम्बन्धी रचनाएँ

'पार्वती-मंगल' के अतिरिक्त शिव-सम्बन्धी कोई स्वतन्त्र रचना गोस्वामीजीने नहीं की है, परंतु उनके वाङ्मयमें शिवका साहित्य विकीर्ण है। मानसके प्रत्येक मङ्गलाचरणमें शिवका स्थान है। केवल सुन्दरकाण्डको छोड़कर। इसकी पूर्ति गोस्वामीजीने लंकाकाण्डके मङ्गलाचरणमें शिवसे सम्बन्धित दो संस्कृत छन्द देकर कर दी है। सुन्दरकाण्डके मङ्गलाचरणमें शिवका स्थान न होनेका एक कारण समझमें आता है और वह यह कि इसमें तो वे हनुमान्का ही पूरा चरित वर्णन करने जा रहे हैं जो कि शिवके अवतार माने जाते हैं। इस स्थितिमें यह भी कहा जा सकता है कि उन्हें तब तो शिवकी वन्दना करना और भी अधिक आवश्यक था। अतः इस प्रश्नका यथेष्ट समाधान नहीं हो पाता कि सुन्दरकाण्डमें उन्होंने शिवको मङ्गलाचरणमें क्यों छोड़ दिया है। किष्किन्धाकाण्डके भी मङ्गलाचरणमें शिव नहीं हैं, पर उनका स्मरण अवश्य है—'श्रीमच्छम्भुमुखेन्दु-सुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा' अर्थात् रामका नाम-अमृत शिवके मुखचन्द्रमें सदैव विराजमान रहता है। इस स्मरणके पश्चात् भाषा (लोकभाषा)—गत मङ्गलाचरणमें उन्होंने एक दोहा काशीपर और दूसरा भगवान् शिवपर देकर यहाँ भी शिव-सम्बन्धी मङ्गलाचरण पूरा कर दिया है।

मङ्गलाचरणोंके अतिरिक्त मानसकी प्रस्तावनामें तो पूरा शिवचरित ही दिया है और उसे रामचरितकी भूमिकाके रूपमें उपस्थित किया है और सबसे अधिक महत्त्वकी बात यह है कि अपने इस महाकाव्यमें 'रामचरित' के साथ 'मानस' शब्दका संयोग ही शिवके कारण किया है; क्योंकि इस चरितको सर्वप्रथम शिवने ही परा वाणीका अदृश्य आकार देकर अपने मानसमें स्थापित किया था और अवसर पाकर पार्वतीके समक्ष इसे वाणीमें व्यक्त किया था—

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा॥
तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥

प्रस्तावनाके अतिरिक्त मानसका समापन भी शिवके

प्रति कृतज्ञता-ज्ञापनके साथ किया गया है और शिवको श्रेष्ठ कवि माना गया है—

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्।

इस प्रकार अपने विश्वविश्रुत महाकाव्यकी प्रस्तावना और उपसंहारमें शिवको ऐसा महत्त्वपूर्ण स्थान देकर गोस्वामीजीने रामकी श्यामल छविके चतुर्दिक् गौरकान्तिका जो चन्द्र-मण्डल बना दिया है, वह कितना अभिराम है, यह भक्तोंके अतिरिक्त काव्य-आस्वादकोंके भी अनुभवकी वस्तु है। साथ ही उत्तरकाण्डके अन्तिम भागमें रुद्राष्टककी मधुर-ओजस्वी ध्वनि भी भुजंगप्रयात छन्दमें लहराती हुई कविके भक्ति-विह्वल मानसकी आनन्द-तरंगको ही प्रकट करती हुई प्रतीत होती है।

रामचरितमानसके बाद शिव-सम्बन्धी साहित्यका विशेष परिमाण विनयपत्रिका और कवितावलीमें प्राप्त होता है। विनयपत्रिकामें शिवकी वन्दनाके बारह स्तोत्र हैं और कवितावलीके उत्तरकाण्डमें बीस छन्द हैं, जिनमें छप्पय, सवैया और कवित्त हैं। दोहावलीमें भी दो-चार दोहे शिव-विषयक हैं, पर वे अत्यन्त सामान्य हैं। पार्वती-मंगल एक खण्डकाव्य है, जिसकी रचना हिंदू परिवारोंमें वैवाहिक अवसरोंपर गानेके लिये की गयी है और जिसकी कथा मानसकी प्रस्तावनामें वर्णित शिव-चरितके ही एक अंशकी अर्थात् शिव-विवाहके प्रकरणकी आवृत्ति है। जहाँ मानसकी प्रस्तावनावाले शिवचरितमें सती-प्रसङ्ग, कामदहन-प्रसङ्ग, शिव-विवाह-प्रसङ्ग और पार्वती-प्रश्न-प्रसङ्ग—ये चार प्रकरण हैं, वहाँ पार्वती-मंगलमें केवल विवाहका ही प्रकरण है। पार्वती-मंगलका महत्त्व कथा-चरित्र (शिव, पार्वती, हिमाचल और मैना) और काव्य-सौन्दर्यकी दृष्टिसे अवश्य अधिक है, पर तुलसीकी भक्तिभावनाका जैसा प्रवाह और उत्कर्ष मानसके मङ्गलाचरणके संस्कृत-छन्दोंमें और विनयपत्रिकाके स्तोत्रों तथा कवितावलीके छप्पय आदिमें दीख पड़ता है वैसा अन्यत्र नहीं।

तुलसीकी शिव-भक्तिका स्वरूप

शिवके प्रति तुलसीकी भक्तिभावना पूर्ण परिपक्व और व्यापक है। भक्तिके लिये आलम्बन (भगवान्) के चरित एवं उसके शील-शक्ति-सौन्दर्यका आधार चाहिये, जो कि तुलसीने अपने काव्यमें पूर्णतया प्रस्तुत किया है। भक्तिकी अभिव्यञ्जनामें कविकी भगवद्विषयक रति अनेक रूपोंमें प्रकट होती है। कहीं वह अपने आराध्यकी महती शक्तिकी अनुभूति करता हुआ अपनी दीनता प्रकट करता है, कहीं उसके ऐश्वर्यका आभास पाकर ओजस्वी उद्गार व्यक्त करता है और कहीं उसके सौन्दर्यपर मुग्ध होकर रमणीय कल्पनाओं और मनोहर उपमाओंकी अजस्र वर्षा करने लग जाता है। कभी-कभी अपने प्रियतम आराध्यसे विशेष आत्मीयताका अनुभव करता हुआ वह उसके साथ विनोद और 'खेतकल्लुकी'में भी प्रवृत्त होता है। तुलसीमें भक्ति-रसके ये दोनों ही पक्ष अर्थात् आलम्बन (शिव) के चरितका विस्तार और उसके शील-शक्ति-सौन्दर्यका प्रकाशन तथा आश्रय (कवि) की रागात्मिका वृत्तिकी पूर्ण अभिव्यञ्जना हुई है।

शिव-चरितके अन्तर्गत कविने काव्यनायकके माता-पिताकी कोई चर्चा नहीं की है; क्योंकि उन्हें वह आदिदेव मानता है। पर उनके शेष परिवार और परिकरका परिचय अवश्य दिया है। कैलासके शिखरपर बसी हुई इस गृहस्थीमें सुन्दर सुशील पत्नी (पार्वती), वीरपुत्र षडानन और संनद्ध प्रहरीके रूपमें नान्दी वृषभ है। अनेक गणोंकी भी चर्चा हुई है। शिवके पिछले सास-श्वशुर दक्ष प्रजापति और उनकी पत्नी तथा दूसरे श्वशुर-दम्पति हिमवान् और मैनाका भी पर्याप्त परिचय शिवचरितके अन्तर्गत आ जाता है। शिवके परिकरके अन्तर्गत उनकी भौतिक पुरी काशी, उनकी आध्यात्मिक पुरी कैलाशगिरि, उनका त्रिशूल, गजचर्म अथवा शार्दूलचर्म, गङ्गा, चन्द्रमा, सर्प आदि आ जाते हैं। शिवकी जीवन-गाथाके तीन प्रसङ्ग तुलसी-साहित्यमें वर्णन किये गये हैं—सती-प्रसङ्ग, कामदहन और पार्वती-वरण। सती-प्रसङ्गमें शिवकी रामभक्तिके साथ ही पतिका मनोविज्ञान भी प्रकट हुआ है और दाम्पत्यजीवनके रसके लिये कपटकी खटाईको सर्वनाशक माना गया है। काम-दहन-प्रसङ्गमें शिवकी सच्ची आन्तरिक शक्ति और उनका योगीरूप प्रकट हुआ है। पार्वती-वरणमें शिवकी अपेक्षा अर्धाङ्गिनी पार्वतीके प्रारम्भिक चरित और उनके आदर्श गुणोंका उद्भावन किया गया है। शिवके चरित (जीवन-गाथा) का इतना विस्तार और परिमाण उनके प्रति भक्तिभावनाके अचल सूत्र जोड़ देनेके लिये पर्याप्त है, जिनसे भक्त अपने आराध्य-

के प्रति जिज्ञासु होकर उससे आत्मीयता स्थापित कर सकता है।

जीवनगाथाके अतिरिक्त, आलम्बनके शील-शक्ति-सौन्दर्य-का पूर्ण प्रसार भक्तिके विकासके लिये अनिवार्य होता है। इस दृष्टिसे सर्वप्रथम 'सौन्दर्य'को लेना उपयुक्त होगा। तुलसीके साहित्यमें रामके सौन्दर्यका जैसा वर्णन हुआ है, उसने रामको विशाल भारतीय जनताका आराध्य बनानेमें बड़ी सहायता की है और उससे तुलसीको लोकप्रियता प्राप्त हुई है। इसी स्तरपर शिवके भी सौन्दर्यका वर्णन तुलसीने किया है, यद्यपि परिमाणमें वह रामके सौन्दर्यवर्णनसे बहुत कम है।

शिवके सौन्दर्यवर्णनमें गोस्वामीजीने उनके कुन्द-इन्दुवर गौरवर्णके प्रभावकी वैसी ही मार्मिक अनुभूति की है, जैसी कि रामके केकीकण्ठाभनील तथा मरकत-मेघ तमाल वर्णकी अनुभूति की है। उनके ललाटके चन्द्रमा और गङ्गा तो नेत्रोंको शीतल करते ही हैं, शरीरकी भस्म और वक्षके लहराते सर्पोंको भी तुलसीने काव्यकी रमणीयता प्रदान कर दी है—

तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं।
मनोभूत कोटि प्रभाश्रीशरीरं॥
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा।
लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजङ्गा॥

सौन्दर्यके अनन्तर शिवकी शक्तिका भी यथेष्ट बोध गोस्वामीजीने कराया है, परंतु यह शस्त्र-शक्ति नहीं वरं योगशक्ति है जिसके द्वारा शिव अपने प्रलयंकर तृतीय नेत्रसे कामको भस्मीभूत करते हैं। इस प्रसङ्गमें शिवकी आन्तरिक शक्तिका आभास अनिवार्य रूपसे होता है।

शिवके शीलमें गोस्वामीजीने अनेक बातें दिखलायी हैं। वे रामके अनन्य भक्त हैं और उन्हें साक्षात् ब्रह्म ही मानते हैं। इस विषयमें वे किसीकी भी रंचमात्र शंकातक सहन नहीं कर सकते हैं, चाहे वह उनकी नवविवाहिता तपस्विनी प्रिया ही क्यों न हो। उनके शीलका दूसरा गुण है उनकी आशुतोषता और वीतरागता। वे अपनेमें इतने पूर्ण हैं कि उन्हें किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं होती और दूसरोंको देनेमें उनके पास किसी वस्तुका अभाव नहीं होता। उन्हें क्रोध बहुत कम आता है, पर जब आता है तब कोई महापरिवर्तन ही उपस्थित होता है। उस समय या तो उनकी अखण्ड समाधि लग जाती है, जैसी कि सतीके कपटाचरणपर रुष्ट होनेके समय लगी थी, अथवा वे घोर शाप दे बैठते हैं जैसा कि उन्होंने अपने विप्रगुरुका अपमान करनेवाले शूद्र शिष्यको दिया था और उसे सर्प-योनिमें जन्म लेना पड़ा था। (देखिये उत्तरकाण्ड)। बादमें अपनी आशुतोषतासे उन्होंने उसे रामकी भक्तिका वरदान भी दिया जो कि उसकी काकयोनिमें जाकर प्रतिफलित हुई।

गोस्वामीजी शिवके शीलमें सबसे अधिक रीझे हुए हैं उनके काम-विजयपर। काम और कामिनीके गोस्वामीजी जितने विरोधी हैं, यह सर्वविदित है। अतः कामको जीतनेवाले और कामिनी (पार्वती) को राम-नामकी रहस्य-कथा सुनानेवाले शिवके प्रति उनका यह महान् अनुराग स्वाभाविक ही था। इसके अतिरिक्त वे शिवको महाकवि भी मानते हैं; जिन्होंने सर्वप्रथम राम-कथाकी रचना अपने मानसमें की थी। उसी 'मानस' रचनाको अपनी भक्तिके द्वारा गोस्वामीजीने शिवसे प्राप्त किया और इसीलिये उन्होंने शिवको अपने गुरुकी भी मान्यता प्रदान की—

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
(मानस, बाल०)

शिव और रामके अनेक गुणोंमें सादृश्य हैं, जिनमें 'करुणा' सर्वप्रमुख है। शिवके लिये 'करुणा-अयन', 'कारुणीक कलकंजलोचन', 'कल्याणकल्पद्रुम' आदि विशेषण उनकी स्तुतियोंमें आये हैं। विनयपत्रिकामें एक हरिशंकरीपद भी है, जिसमें कविने विष्णु और शिवके गुणोंकी तुलना करते हुए उनकी वन्दना की है। शिवमें रामकी अपेक्षा एक ही अन्तर दिखलायी पड़ता है और वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अन्तर है। राम तो सदा सौम्य-वेश हैं, पर शिव भद्रवेशके साथ (या रम्य-छविके साथ) रुद्र-वेश भी धारण करते हैं। वे 'प्रसन्नानन' भी हैं और 'कराल महाकाल' भी हैं और इस प्रकार जीवनकी उजाली और अंधेरी दोनोंको ही प्रकट करते हैं।

विनयपत्रिकाके स्तोत्रों और मानसके रुद्राष्टकमें जो सरस छन्दोबद्धता और संगीतका अविरल प्रवाह है, वह गोस्वामीजीकी शिवकी अगाध सौन्दर्यानुभूतिको प्रकट करता है। साथ ही समासबद्धताके कारण इसमें जो सहज ओजका आविर्भाव हुआ है, वह शिवके ऐश्वर्य अथवा प्रतापके बोधको प्रकट करता है। अपने आराध्यसे आत्मीयताका अनुभव करनेपर भक्तमें जो वाचालता आ जाती है, उसका

सुन्दर उदाहरण विनयपत्रिकाके 'बावरो रावरो नाह भवानी' (पद सं० ५) पदमें और कवितावलीकी ऐसी पंक्तियोंमें प्राप्त होता है—

मौनमें भाँग, धतूरोई आँगन, नागेके आगें हैं माँगने बाढ़े।

(कवितावली, उत्तर० १५४)

इस प्रकार तुलसीके साहित्यमें रामकी भक्तिके साथ शिवकी भक्तिकी जो अविरल सरिता प्रवाहित हुई है, उसने भक्ति-रसमें और अधिक अगाधता, व्यापकता और आध्यात्मिक तृप्ति उत्पन्न कर दी है। अतः गोस्वामीजीको हम हिंदीमें रामभक्तिका ही नहीं, शिव-भक्तिका भी श्रेष्ठ कवि कह सकते हैं। आगेके कवियोंने यत्र-तत्र रामके साथ अथवा अन्य प्रसङ्गोंमें शिव-भक्तिकी चर्चा भले ही की है, पर वे शिवके प्रति ऐसा अगाध अनुराग जाग्रत् नहीं कर सके हैं जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजीने किया था।

कौन अन्धा ? कौन लाचार ?

(लेखक—प्राध्यापक श्रीविवेकीरायजी)

'अन्धवा लचरवापर—
दया करऽए सीताराम।'

(ऐ सीताराम ! इस अन्धे लाचार व्यक्तिपर दया करो।)

कौन सीता-राम है ? किससे वह याचना करता है ? वास्तवमें उसके लिये सड़कसे गुजरनेवाला हर पुरुष राम और हर नारी सीता है। यदि वह सचमुच अन्धा और लाचार नहीं होता तो उसे लोभीकी संज्ञा प्रदानकर हम चट महाकवि बिहारीलालका एक दोहा पढ़ देते—

घर घर डोलत दीन ह्वै, जन-जन जाँचत जाय।
दिये लोभ चसमा चखनु लघु पुनि बड़ा लखाय॥

किंतु यहाँ 'लखाय'का तो प्रश्न ही नहीं है। छोटे-बड़ेका विभेद भी स्वयं समाप्त है। यहाँ तो साक्षात् विशिष्टाद्वैतवाद बोल रहा है। 'सीयराममय सब जग जानी' यह चराचर जगत् सीतारामका स्वरूप है। जो अपनेको संसारका साधारण आदमी मानता है, उसकी याचना उससे नहीं है। उसके हाथ प्रभुके आगे फैले हैं। प्रभु कहाँ किसी दिव्य लोकमें ही नहीं हैं। वे कहीं वकील बनकर रिक्सेपर जा रहे हैं, कहीं मुअक्किल बनकर पैदल चले जा रहे हैं। वे कहीं छात्र बनकर सायकिलपर भागे जा रहे हैं और कहीं किसी रूपमें तो कहीं किसी रूपमें जा रहे हैं, आ रहे हैं। सभी प्रभु हैं, ईश्वरतुल्य हैं अथवा ब्रह्मस्वरूप हैं। इसीलिये तो फैक्टरीके पास सड़कके एक किनारे बैठा यह जीव अलख जगा रहा है—

'अन्धवा लचरवापर—
दयाकर ए सीताराम।'

मैं बैठा सुन रहा हूँ। सड़क चल रही है। साइकिल-रिक्सेकी टुन-टुन, मोटरकी पों-पों, ताँगेकी खटर-खट्ट और पैदल यात्रियोंकी बोलचालकी ध्वनियाँ समवेत रूपसे एक विशिष्ट ध्वनि बनकर कानोंमें आ रही हैं। चहल-पहल, कोलाहल और हलचलकी मुखर आहटके बीच, सबको चीरती हुई उसकी आवाज अपना पृथक् अस्तित्व बनाये हुए गूँज रही है। जिस प्रकार सड़क सत्य है, सड़कपर आने-जानेवालोंकी भीड़-भाड़ सत्य है, उसकी वह आवाज भी सत्य है। जब सड़क सोयी रहती है, तब यह आवाज भी सोयी रहती है। जब सड़क जगती है तो यह आवाज भी जगती है। जैसे यह आवाज इस सड़क और पूरे वातावरणका एक अङ्ग बन गयी है। संध्याकालसे लेकर रातभर और सुबह बड़ी देरतक यह आवाज समाधिस्थ रहती है। बहुत सूना-सूना-सा लगता है। कुछ अभाव-सा लगता है। कचहरीका समय होनेके साथ ही वह चिरपरिचित ध्वनि कानोंमें पड़ती है और तबसे पड़ती ही जाती है। हम सुनें चाहे न सुनें, वह रामधुन होती रहती है। हम उसपर ध्यान दें चाहे न दें, उसकी निरन्तरतामें कोई अन्तर नहीं पड़ता। जाड़ा, गरमी और बरसात कोई मौसम हो, प्रकृतिके अटल नियमकी भाँति यह संकीर्तन होता रहता है। संसारकी समस्त हाय-हाय और दौड़धूपके बीच खुली सड़कपर यह पूजा चलती रहती है। मैं सुन रहा हूँ और इस समय भी सावनकी फुहारके बीचसे याचना-यज्ञके वे पूत मन्त्र सुनायी पड़ रहे हैं—

'अन्धवा लचरवापर—
दया कर ए सीताराम ।'

जी, हाँ । आपने ठीक समझा । मैं यही कह रहा हूँ कि वह प्रभुका नाम-संकीर्तन कर रहा है, यज्ञ कर रहा है और पूजा कर रहा है । आपने क्या यह समझा कि वह कोरा भिखारी है और पैसे-धेलेके लिये गला फाड़-फाड़कर आसमान-जमीन एक कर रहा है ? ऐसी बात नहीं है । वह आपसे नहीं माँगता है । उसे आपकी दया नहीं उबार सकती । वह सीताराम-घनका चातक है । उसे देखकर, उसकी दीन आवाज सुनकर यदि आपके दिलका कोई कोना द्रवित हुआ तो आप निस्संदेह आप नहीं, साक्षात् राम हैं और आप धन्य हैं ।

मुझपर नाराज न हों कि मैं पथके इस भिखारीको इतने ज्ञानीका रूप दे रहा हूँ । मैं विवश हूँ, मुझे बराबर ऐसा लग रहा है कि यह अन्धा लाचार ज्ञानकी दृष्टिसे हमसे ऊँचे स्तरपर है । संसारमें सच्चा ज्ञान क्या है ? अखिल ज्ञानके स्रोतको जान जाना ही सबसे बड़ा ज्ञान है । यह ज्ञान शायद सीखनेसे नहीं आता । यह सहज ज्ञान है, परंतु है बहुत कठिन । जो बड़े मालिकके खुले दरबारमें संसारमें पड़ा-पड़ा सर्वत्र उसकी आभाको पहचानने लगा है, जिसे जन-जनमें उस परात्पर करुणासागरकी झाँकी मिलने लगी है और जो अति दीन बन, आर्त बन उसकी दयाके लिये रट लगा रहा है, उसके ज्ञानमें संशय कैसा ? ज्ञान वह नहीं जो पोथियों या श्लोकोंमें बंद है । ज्ञान खुली सड़कपर, खुले आसमानके नीचे और खुले मनमें अलिखित पड़ा है । इसी प्रकार भगवान् भी खुले संसारमें घूम रहा है । उसके अनेक नाम-रूप हैं । कहीं मातारूपमें है, कहीं वह पिता-रूपमें है, कहीं मित्र-रूपमें तो कहीं शत्रुरूपमें । इस खुले संसारके जनता-जनार्दनका याचक पुजारी ज्ञानी नहीं तो और क्या है ? मेरी इस बातकी प्रतीति आपको तब हो सकेगी, जब एक बार ध्यानसे उसकी आवाजको सुनेंगे । सुनिये, तो—कैसी सधी, सरल, कातर, निर्विकार, निरालस और निर्द्वन्द्व आवाज है, लगातार आती अविचल आवाज है—

'अन्धवा लचरवापर—
दया कर ए सीताराम ।';

मुझे तो ऐसा लग रहा है कि सीताराम वह स्वयं है और सारे संसारको ठग रहा है, भुलावा दे रहा है, चकमा दिखा रहा है—अथवा उसकी परीक्षा ही ले रहा है । लोग समझते हैं कि यह भीख माँग रहा है और उधर वह अपनी मौजमें, स्वयं अपनी याचक-लीलामें लीन किसी अतीन्द्रिय लोकमें रमण करता है । बहुत नासमझ हैं वे लोग जो उसे दयनीय समझते हैं । जरा गौर तो करो, क्या सचमुच वह तुम्हारी दयापर जी रहा है ? कितने दिन तुमने उसे खिलाया ? कितने वर्ष तुमने उसका पालन किया ? तुम्हें मालूम है कि वह कहाँ सोता है ? तुमने उसे भोजन करते देखा है ? तुमने तो बस उसकी आवाज सुनी । तुमने समझा कि यह याचना करता है और यह नहीं जाना कि यह उसकी योग-समाधिका अनहद नाद है । उसका उपकार मानो कि खुली-सड़कपर सच्चा ज्ञान बाँट रहा है । तुम्हारे स्वरूपको स्मरण करा रहा है । धर्मप्राण भारतका हर व्यक्ति जानता है कि उसमें भगवान्का अंश है अथवा पारमार्थिक दृष्टिसे वह ब्रह्मस्वरूप है । किंतु यह ज्ञान सोया रहता है । इसे जगानेकी जरूरत है । जिसे तुम अन्धा-लाचार समझ रहे हो वह वास्तवमें स्वयं तुम्हारे अन्धेपन और तुम्हारी लाचारीको छिन्नमूल करनेके लिये मन्त्रोच्चारण करता रहता है । वह तुम्हें स्मरण दिला रहा है कि तुम दुःख, चिन्ता और रोग-शोकमें डूबे साधारण जीव नहीं हो । तुम परम चैतन्य भगवत्स्वरूप हो । तुम सीताराम हो । इसके साथ ही वह तुम्हारे कर्तव्योंकी याद दिला रहा है । सबसे बड़ा कर्तव्य है दुनियाके अन्धे-लाचार लोगोंपर दया करनेका । ज्ञानकी अन्धता और सुकर्मकी लाचारियाँ—यही संसारकी अधोगतिका मूल है । तुम ऊीवोंपर दया कर उन्हें ज्योति प्रदान करो, स्फूर्ति और तेजस्विता प्रदान करो । उन्हें सुकर्म और सुमार्गमें प्रतिष्ठित करो । तुम सड़कपर बैठे इस एक अन्धे-लाचारकी चिन्ता करो चाहे न करो । यह वास्तवमें अपने लिये इतनी बुलंद आवाजमें तुम्हारा आह्वान नहीं कर रहा है । यह स्वकेन्द्रित क्षुद्र स्वार्थके लिये तुम्हें नहीं पुकार रहा है । वह तो किनारे लग चुका है । वह संसारके कोटि-कोटि आँख रहते अन्धों और सामर्थ्य रहते लाचारोंपर दया करनेके लिये तुम्हारे रामत्वको जगा रहा है । आज सारे दुःखोंकी जड़ यही है कि हम अपने स्थूल रूपके ही बारेमें सोचते हैं । हमारा समस्त चिन्तन केवल अपने स्थूल सुख-दुःखकी खोज-खबरमें सना रहता है । परार्थ-चिन्तन गुफाओंमें चला गया और उसके स्थानापन्न हो गयी—'परनिन्दा' । यह

भारी अधोगति है। इस अधोगतिका मूल यह भावना है कि हम मनुष्य हैं। हम भूल गये हैं कि हम ईश्वर हैं। कोरा मनुष्य वह है जो केवल अपने बारेमें सोचता-विचारता है और मानव-ईश्वर वह है जो समस्त संसारके योग-क्षेमकी चिन्ता करता है। आज मनुष्य अपने ईश्वरत्वको एकदम भूलता जा रहा है। इसीलिये सड़कपर बैठकर आज स्वयं ईश्वर मनुष्यको जगा रहा है—

'अन्धवा लचरवापर—
दया कर ए सीताराम।'

अरे रे रे रे यह क्या कहते हो? मैं क्या सुनता हूँ? तर्कोंके सींग ऐसे मत भाँजो दोस्त! तुम कहते हो—यह धर्मभीरु जनताका शोषण करनेका जाल पसारे बैठा है। यह भोले-भाले लोगोंकी करुणाको उभाड़कर उनकी जेब बिना कैंची-पत्तीके काट लेनेवाली धार्मिक डकैती नाधे बैठा है। ऐसे ही भिखमंगे जब मर जाते हैं तो उनकी गुदड़ीसे हजारोंके नोट निकलते हैं। इस उद्यमसे कितने अन्धे अपने परिवारको सैकड़ों रुपया माहवार देते हैं। वे स्वयंको बहुत चालाक और दुनियाको मूर्ख समझकर ठगते हैं! यह चिल्लाना इनकी सर्विस है। इससे देशमें निठल्लेबाजीको प्रोत्साहन मिलता है। सरकारको इसे तत्काल रोक देना चाहिये। इत्यादि।

ओफ, इस प्रकार कहकर तुम मेरी भावनाओंकी पाँख काट रहे हो। तुम्हें गर्व है कि हम वैज्ञानिक युगके प्राणी हैं। तुम्हें गर्व है कि अब देशमें स्वराज्य हो चुका है। किंतु मुझे तो ऐसा लगता है तुम्हारा वैज्ञानिक-युग अन्धा-युग है और स्वराज्य एकदम लाचार। तब अवश्य तुम्हारे लिये ही वह बेचारा भिखारी खून-पसीना एक कर रहा है। यह तुम्हारी भारी भूल है कि वह अपने लिये पैसा माँगता है। पैसा दुनिया दे देती है, तो वह क्या करे। ले लेता है। वास्तवमें वह स्वराज्य-सुखभोगी, वैज्ञानिक-युगके, जनतन्त्रके स्वाधीनचेता मानवोंके लिये, उनकी अन्धता और विवशताओंको दूर करनेके लिये प्रार्थना कर रहा है।

अब यहाँ आकर उसकी पुकारका हम एक दूसरा नया अर्थ करेंगे। वह कहता है—

अन्धवा लचरवापर—
दया कर ए सीताराम।

(अर्थात्—'हे प्रभु सीताराम! संसारमें आज चतुर्दिक् अन्धे और लाचार लोग ही दिखायी पड़ रहे हैं; हे करुणावतार! उनके ऊपर दया करो।')

यह तो वही हाल है कि 'दुनिया हमको पागल कहती, हम कहते दुनिया पागल है।' तुम उसे भिखारी समझ रहे हो और उधर वह तुम्हारी जडान्धतापर चिन्तित है। तुम उसे लाचार मान बैठे हो और वह तुम्हारी लाचारियोंको देखकर उद्विग्न है।

वास्तविक स्थिति क्या है? क्या सचमुच हम अन्धे नहीं हैं? क्या जनताको आँख रहते हुए भी वस्तुस्थिति ठीक-ठीक सूझ रही है? जनताको जनार्दन कहकर, सर्वोच्च सत्ताका अधिकारी कहकर और अपना नियन्ता कहकर, मीठी बात और आशा-दिलासा भरे भाषणोंसे कोई ठग ले गया। वह मूढ़, अशिक्षित और जर्जर ही रह गयी तथा उसका मत-माल अपहृत कर युग-दस्यु आज आकाशमें उड़ने लगे। फिर भी हम उनकी जय-जयकार कर रहे हैं। अन्धता और क्या है?

फिर हम लाचार हैं कितने? स्वराज्य, विकास और अरबों-खरबोंकी विकास-योजनाओंकी सामने उपलब्धि क्या है? बाजारमें साबुन-पाउडर, तेल-कंघी और कपड़ा-बर्तन आदि तो है, परंतु अन्न-ब्रह्मका दर्शन नहीं हो रहा है। सरस-रसका अकाल पड़ गया। अधिकारियोंके पैरसे हम चलते हैं। अखबारोंकी आँखसे हम देखते और नेताओंकी बुद्धिसे हम सोचते हैं। जीवन जकड़ गया। गला फँस गया। साँस लेना कठिन है। हाय! हाय! सचमुच हम कितने लाचार हैं। तो मित्र! दया इस भिखारीपर नहीं, तुम दया स्वयंपर करो। इसका तो महान् उपकार मानो कि यह तुमपर दया करके, तुम्हारे ऊपर दया करनेके लिये भगवान्को पुकार रहा है—

अन्धवा लचरवापर—
दया कर ए सीताराम।

साधनाका कठिन मार्ग

(लेखक—श्रीकृष्णमुनिजी प्रभाकर)

धर्मोपदेश करते हुए एक दिन गुरुने शिष्योंको यह कथा सुनायी—

एक बार कोई चञ्चल तथा चपल व्यक्ति नौकरीकी इच्छासे किसी धनिकके पास गया। धनिकको भी नौकरकी ही तलाश थी, इसलिये उसने झट नौकरको रखना स्वीकार कर लिया। तब नौकर विनयपूर्वक बोला—'मालिक! मेरी एक शर्त है। उसे आप मानेंगे, तभी मैं आपकी सेवामें रह सकता हूँ। अन्यथा नहीं।'

धनिकको बड़ा आश्चर्य हुआ कि नौकरीकी इच्छावाला यह व्यक्ति कैसा विचित्र है, जो अपने मालिकसे ही अपनी बात मनवाना चाहता है! फिर भी, धनिकको उसकी शर्त सुननेकी उत्कण्ठा हुई। उसने नौकरको अपनी बात स्पष्ट कहनेकी अनुज्ञा दे दी।

धनिकके सामने उस व्यक्तिने अपना एक बड़ा ही विचित्र प्रस्ताव रक्खा। बोला—'मुझे सतत कार्यरत रखना पड़ेगा। एक क्षण भी मैं बिना कामके नहीं बैठूँगा। यदि आपने मुझे काम बतानेमें तनिक भी आलस्य किया अथवा किसी भी प्रकारकी आनाकानी की, तो मैं अपने स्वभावके अनुसार आपकी हानि करूँगा।'

धनिकको यह सुनकर और भी विस्मय हुआ। इच्छित और भला व्यक्ति मिल जानेपर उसे क्या आपत्ति हो सकती थी! काम अधिक है, यह सोचकर धनिकने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उसे अपने पास नौकर रख लिया।

पर, कुछ ही दिनोंमें धनिकने अनुभव किया कि नौकरके विषयमें उसका अनुमान ठीक नहीं था। नौकर इतनी फुर्ती और कुशलतासे सारे कार्य पूर्ण कर देता, जैसे उसे कोई भूत सिद्ध हो! अब तो मालिक बड़ा चकराया। यदि कभी कार्य समाप्त हो जानेपर उसे कोई दूसरा काम नहीं बताता, तो वह मालिकका नुकसान करनेके लिये उतारू हो जाता। इसलिये विवश होकर उसे व्यर्थके और निकम्मे कामोंमें वह लगाये रखता। लेकिन यह भी कबतक चलता! वह बड़े सोचमें पड़ गया। अपने अन्य सारे कार्य भूलकर सारा दिन उसीको काम बतलानेमें लगा रहता। आखिर काम भी वह कितने बताता?

सोचते-सोचते उसने एक युक्ति ढूँढ निकाली और अगले क्षण जब नौकर उसके पास आया, तो अपने तहखानेसे निकलवाकर उसने उससे ठोस लोहेका एक ऐसा ऊँचा, चिकना और भुजदण्ड-सरीखा मोटा स्तम्भ बाहर गड़वाया, जिसके ठीक ऊपरी सिरेमें हीरे-जैसी कोई वस्तु चमक रही थी। फिर बादमें उससे कहा—'जबतक मैं तुम्हें कोई दूसरा काम नहीं बतलाता; तबतक तुम इसके ऊपरकी चमकती मणिको पकड़ने और प्राप्त करनेका यत्न करो।'

लपककर नौकरने स्तम्भको जकड़ लिया। उसने ऊपर चढ़नेकी चेष्टा की, तो अगले ही क्षण खम्भेकी चिकनाहटके कारण वह धड़ामसे नीचे आ गिरा।

निश्चिन्त होकर मालिक जा चुका था। नौकर दृढ़तासे पुनः-पुनः यत्न करता, गिरता, पड़ता। हाथ-पैर उसके बुरी तरह छिल गये और थोड़ेसे समयमें ही वह थककर चूर-चूर हो गया।

बादमें जब मालिकने उसे कोई दूसरा कार्य बतलाया, तो उस लौह-स्तम्भके भयसे नौकरने बड़ी ही धीमी गतिसे उसे सम्पन्न किया।

अब मालिक भी बड़ा खुश था कि उसने नौकरकी अनिष्टकारी बीमारीका हल सहज ही खोज निकाला। वह कभी भी उसे अब तंग न करेगा और न उसका कोई नुकसान ही करनेके प्रति उद्यत होगा।

उपसंहारमें गुरुने शिष्योंके समक्ष यह दार्शनिक तत्त्व रक्खा।

वह चञ्चल और चपल नौकर और कोई नहीं, मनका ही प्रतीकात्मक रूप है, जो अपनी स्वभावगत चञ्चलताके कारण बिना कुछ कार्य किये रह ही नहीं सकता। यदि उसे किसी कार्यमें संलग्न न रक्खा गया, तो वह किसी भी क्षण कोई भी अनिष्ट करनेपर उतारू हो सकता है; क्योंकि वह एक पल भी खाली नहीं बैठ सकता। इस प्रकार वह नाना प्रकारके मनमाने पापपूर्ण कर्मोंद्वारा आत्माका अहित करता रहता है। उसे अपने शौर्य-बलके दृढत्वपर घमण्डपूर्ण विश्वास है।

मालिक मार्गदर्शक गुरुका प्रतीक है, जो चञ्चल मनको निग्रहका मार्ग बताकर उसे सही दिशाकी ओर संकेत करता है। जिस प्रकार मदारी बंदरको अपने अधीन करके उसे स्वेच्छानुकूल नाच नचवाता है, उसी प्रकार गुरु भी

सेवकरूप मनको अपना वशवर्ती बनाकर उसे नाम-स्मरणके लौहदण्डपर चढ़नेकी प्रेरणा प्रदान करता है।

गुरुके इस कार्यके पीछे बड़ा भारी रहस्य छिपा हुआ है। वह सेवकरूप मनको अन्य निरर्थक कार्योंसे हटाकर स्मरणरूप लौहदण्डपर एकाग्र करना चाहता है। चञ्चल और चपल मनवाले सेवककी वृत्ति यद्यपि उसमें स्थिर नहीं हो पाती; क्योंकि उसमें शारीरिक बाधाओंकी अमङ्गलता उसे दृष्टिगोचर होती है, फिर भी गुरुके आदेशानुसार उसे यह सब कुछ करना पड़ता है। गुरु उसे उससे मुक्त नहीं रखना चाहता; क्योंकि उसे भय है कि रिक्त होनेपर स्वभावतः वह कोई भी उत्पात खड़ा कर सकता है।

गुरुने अन्तमें कथाको इस प्रकार रूपक-बद्ध किया।

नौकर साधक (मन) है, मालिक गुरु और लौह-स्तम्भ साधनाके उस कठिन मार्गका प्रतीक है, जिसपर सहज चला नहीं जा सकता। चञ्चल मनवाले इसमें बार-बार डिगते हैं, उनके बार-बार विचलित होनेकी सम्भावना रहती है और केवल दृढनिश्चयी ही इस साधना-मार्गमें सफल हो सकते हैं।

मनुष्य-जीवन व्यर्थ और अनर्थमय

दुःखोंसे है भरा हुआ यह क्षणभंगुर अनित्य संसार।
इसमें नित्य सुखोंकी आशा दुःख बढ़ाती बारंबार॥
'भोगोंमें सुख है—' इस भ्रमसे करता मनुज विविध व्यापार।
पर न पा दर्शन स्थायी सुखके करता नित हाहाकार॥

बार-बार दुख पाता, लगता आशापर भारी आघात।
पर न दुराशा मूढ छोड़ता नये-नये रचता उत्पात॥
करता नित ममताकी वस्तु बढ़ानेके सूत्रोंका पात।
बढ़ता राग-द्वेष मोहवश, हो जाता जिससे विनिपात॥

मेरा मत, मेरी भाषा, मेरा धन, मेरे भूमि-मकान।
मेरा दल, मेरा घर, मेरे पद-अधिकार-मान-सम्मान॥
मैं समर्थ, मैं सुखी, राष्ट्रनिर्माता मैं नेता महान्।
है कौन जगत्में ऐसा जो इन सबमें हो मेरे समान॥

× × × ×

यों करता वह निरी जल्पना, करता सदा वृथा बकवास।
रहता चिन्ताग्रस्त मृत्युके अन्तिम क्षणतक सदा उदास॥
व्यर्थ बढ़ाकर अहंकार-मद, करता अपना आप विनाश।
सदा अशान्ति भोगता, आते नहीं शान्ति-सुख उसके पास॥

काल देखता नहीं और कुछ, सहज चला जाता निज चाल।
हो जाते निःशेष श्वास जीवनके, आता अन्तिम काल॥
अति असहाय निराशा छायी, बदला रंग, हुआ बेहाल।
छूट चले 'मैं-मेरे' के सब पद-पदार्थ अति क्षुद्र विशाल॥

प्राण निकल जाते, जाता वह छोड़ बाध्य हो गृह-संसार।
खोकर व्यर्थ सुअवसर, लेकर अघ-अनर्थका भारी भार॥
क्यों आया? क्या किया? गवाँया क्यों मैंने जीवन निस्सार।
पछताता, रोता, कराहता पर न हाथ लगता कुछ सार॥

तुम अपना कर्तव्यपालन करनेके लिये आये हो

(लेखक—डा० श्रीगोपालप्रसादजी 'वंशी')

एक था राजा। बड़े परिश्रमसे राज्य करता था, बहुत ध्यान रखता था प्रजाका; परंतु ध्यान रखते हुए भी थक जाता था। अन्तमें दुखी होकर वह अपने गुरुके पास गया, जो एक वनमें एक वृक्षके नीचे रहते थे। उनके पास जाकर बोला, 'गुरुदेव! मैं इस राज्यके झंझटोंसे, इसकी समस्याओंसे, इसकी उलझनोंसे दुखी हो गया हूँ। एक समस्याको हल करता हूँ, तो दूसरी आकर खड़ी हो जाती है, दूसरीको सुलझाता हूँ तो तीसरी। नित-नयी उलझन, नित नये झगड़े। मैं तो दुखी हो गया हूँ इस जीवनसे—क्या करूँ?' गुरुदेवने कहा, 'राजन्! ऐसी बात है तो छोड़ दो इस राज्यको।' राजाने कहा, 'कैसे छोड़ूँ, छोड़ देनेसे इसकी समस्याएँ सुलझ नहीं जायँगी, सब कुछ तितर-बितर हो जायगा। अराजकता फैल जायगी चारों ओर।' गुरुने कहा, 'बहुत अच्छा, अपने पुत्रको राज्य दे दो। तुम मेरे पास आकर रहो। जैसे मैं रहता हूँ वैसे निश्चिन्त होकर।' राजाने कहा, 'परंतु मेरा पुत्र तो अभी छोटा-सा बच्चा है, वह इस भारको सँभालेगा कैसे?' गुरुदेवने कहा, 'बहुत अच्छा, तो फिर तुम अपना राज्य मुझे दे दो, मैं चलाऊँगा उसे।' राजाने कहा, 'यह मुझे स्वीकार है।' गुरुने कहा, 'तो हाथमें पानी लेकर संकल्प करो। सारा राज्य मुझे दान कर दो।'

राजाने ऐसा ही किया और उठकर चल पड़ा। गुरुने पूछा, 'अब कहाँ जाते हो।' राजाने कहा, 'कोषसे कुछ रुपया लेकर किसी दूसरे देशमें जाऊँगा, वहाँ व्यापार करके जीवन व्यतीत करूँगा।' गुरुने हँसते हुए कहा, 'राज्य मुझे दे दिया तो कोष भी मेरा ही हो गया। अब उसपर तुम्हारा अधिकार क्या है?' राजाने सिर झुकाकर कहा, 'वास्तवमें कोई अधिकार नहीं, राज्यमें वापस नहीं जाऊँगा।' गुरुने पूछा, 'तो फिर करोगे क्या?' राजा बोला, 'कहीं जाकर नौकरी करूँगा।' गुरु बोले, 'यदि नौकरी करनी है तो मेरी ही कर लो। इतना बड़ा राज्य है मेरे पास, उसे चलानेके लिये किसी-न-किसीको तो रखना ही पड़ेगा। तुम ही वह काम करो। मुझे सेवककी आवश्यकता है, तुम्हें सेवाकी। बोलो यह काम करोगे?' राजाने सोचते हुए कहा, 'करूँगा।' गुरु बोले, 'तो जाओ, आजसे मेरे सेवक बनकर राज्यको चलाओ। देखो वहाँ कुछ भी तुम्हारा नहीं है। भला हो, बुरा हो, हानि हो, लाभ हो—सब मेरा होगा। तुम्हें केवल वेतन मिलेगा।'

राजाने इस बातको स्वीकार किया। वापस आकर राज्य चलाने लगा। कोई एक मासके बाद गुरुने नगरमें आकर पूछा, 'कहो भाई! अब इस राज्यको चलाना कैसा लगता है? अब भी क्या दुखी हो गये हो? अब भी क्या जीवन संकटमय प्रतीत होता है?' राजाने कहा, 'नहीं महाराज! अब इसमें मेरा क्या है। मैं तो नौकरी करता हूँ, पूरे ध्यानसे, परिश्रमसे करता हूँ और फिर रातको निश्चिन्त होकर सो जाता हूँ।'

'तो सुनो भाई! यह है वह साधन जिसको अपनानेके पश्चात् मनुष्य कर्म करता हुआ भी उसमें लिप्त नहीं होता। अपने आपको स्वामी न समझो, सेवक समझो। ममता ही बन्धन है, ममता ही दुःख है। ममता गयी कि बन्धन कटा, दुःख मिटा। यहाँ तुम्हारा कुछ है ही नहीं। यह सब तुमसे पूर्व भी विद्यमान था, बादमें भी रहेगा। तुम केवल अपना कर्तव्य पालन करनेके लिये आये हो, उसे पूर्ण करो और चले जाओ। जो कुछ दिखायी देता है, जो कुछ तुम्हारे चारों ओर है, उसमें लिपट न जाओ। कहीं ममता न करो—मालिकका समझकर सेवा करो।

गांधीजी और गोरक्षा

[गताङ्क पृष्ठ ११३४ से आगे]

पण्डितजीके प्रधान मन्त्रित्वमें नवम्बर १९४७ को गोवधनिरोधपर विचार करनेके लिये एक कमेटी नियुक्त हुई थी, उस कमेटीने नवम्बर १९४८ में निम्नलिखित सिफारिशें की थीं—

(१) सबसे पहले—

(क) १४ वर्षकी ऊपरकी अवस्थावाले पशु जो कार्य करने और प्रजनन करनेमें असमर्थ हैं ।

(ख) किसी भी उम्रके पशु जो स्थायी रूपसे कार्य करनेमें या प्रजनन-कार्यमें उग्र चोट अथवा विरूपताके कारण असमर्थ हो गये हों, उनको छोड़कर बाकी सब पशुओंका कत्ल बंद किया जाय ।

(२) कसाईखाने, जिनके पास लाइसेंस नहीं हैं और जो पशुओंका अनधिकार कत्ल करते हैं, उनको तुरंत रोका जाय और कानूनमें उसका हस्तक्षेप अपराध माना जाय ।

(३) पशुओंका वध रोकनेके लिये यथाशीघ्र विधान जारी किया जाय । हर हालतमें विधान बननेसे दो वर्षकी अवधिके भीतर पशुओंका वध अवश्य बंद हो जाय और इस दो वर्षकी अवधिमें कार्य और प्रजननमें असमर्थ पशुओंके पालन और देखभालके लिये प्रबन्ध कर लिया जाय ।

(क) देशकी भूमिका निरीक्षण करके गोसदन स्थापनके लायक स्थान खोजे जायँ और उसके खर्च आदिका अनुमान लगाकर आँकड़े तैयार करके उसका प्रबन्ध किया जाय ।

(ख) धनराशि एकत्र करनेके लिये निम्नलिखित विधान पास किये जायँ—

(अ) गोशाला—उप-कर जैसे लाग, वित्ति, कटौती, धर्मादाको वैध मानकर गोशाला और गोसदनकी उन्नतिके सुधारके लिये उसके संग्रह करनेके नियम बनाये जायँ ।

(आ) उपर्युक्त (अ) के अतिरिक्त एक उप-कर ऐसे ढंगसे लगाया जाय जिसका बोझ सबपर समान-सा हो और उसके संग्रहमें कोई अलग खर्च न करना पड़े अर्थात् वर्तमान संग्रह करनेके साधनोंका ही इसके लिये उपयोग हो जाय ।

(इ) सही और विश्वसनीय आँकड़ोंके अभावमें यह अनुमान किया जाता है कि देशभरके पशुओंकी सम्पूर्ण आबादीमेंसे दो प्रतिशत संख्या कामके अयोग्य होगी । इसके अतिरिक्त यह भी अनुमान किया जाता है कि अनुत्पादक पशुओंकी संख्या आठ प्रतिशत है । इसका अर्थ हुआ कि २८ लाख पशु कामके अयोग्य और १ करोड़ १२ लाख अनुत्पादक पशु होंगे । गोसदनके अनुबन्धमें दिखाये गये वर्णनके अनुसार लगभग निम्नलिखित खर्च होगा—

	एक बार होनेवाला अस्थायी खर्च १६ रुपये प्रति पशु (लाख रुपये)	स्थायी वार्षिक खर्च ७ रुपये प्रति पशु (लाख रुपये)
२८ लाख कामके अयोग्य पशु	४४८	१९६
१ करोड़ १२ लाख अनुत्पादक पशु	१७९२	७८४
चुने हुए स्थानोंसे साँड़ोंका उत्पादन	२००	३००
योग	२४४०	१२८०

कमेटी समझती है कि यद्यपि गोवध-निरोधसे कामके अयोग्य पशुओंके पालनमें ४४८ लाख रुपयोंका एक बार होनेवाला अस्थायी खर्च और १९६ लाख रुपयोंका स्थायी वार्षिक खर्च होगा तो भी यह समझा जाता है कि कामके अयोग्य पशुओंको अलग नहीं किया जायगा और उनका बढ़ना नहीं रोका जायगा तो पशुओंका वास्तविक सुधार सम्भव नहीं हो सकेगा । अतः कमेटीकी यह राय है कि यदि बताये हुए प्रकारसे पशुओंका परिरक्षण और सुधार किया जाय तो कुल २४४० लाख रुपये अस्थायी खर्च और १२८० लाख रुपये स्थायी वार्षिक खर्चकी आवश्यकता होगी । ११ सदस्योंमेंसे दो सदस्योंने अलग प्रकारकी राय दी थी । सत्गुरु श्रीप्रतापसिंहजीने तो तुरंत गोवध-निरोध चाहा और श्रीसतीशचन्द्र दासगुप्तने कहा कि बताये हुए काम

किये जाते हैं तो कानूनकी आवश्यकता नहीं होगी, लेकिन उपयोगी ढोरोंका वध बंद करनेको उन्होंने भी कानून चाहा।

इसके बाद १९५० के आरम्भसे नया संविधान लागू हुआ, जिसके अनुच्छेद ४८ में गोसंवर्द्धन और गोरक्षणकी सिफारिशें हैं। इनपर कई राज्योंने कानून बनाया। उसपर पण्डित नेहरूजीके प्रधान मन्त्रित्वमें खाद्य मन्त्रालयकी ओरसे सब राज्योंको एक सर्कुलर संख्या एफ १३-१५/४९-एल दिनाङ्क २०-१२-१९५० का भेजा गया, जिसका उल्लेख भारत सरकारके खाद्य और कृषि मन्त्रालयद्वारा प्रकाशित 'भारतमें मांसके विक्रयपर रिपोर्ट,१९५६' संस्करणके पृष्ठ २८ पर है और उसका सार दिया गया है कि संविधानके अनुच्छेद ४८ के अनुसार गोवंशके सब पशुओंके वधका सम्पूर्ण निरोधका आशय नहीं है, बल्कि दूध देनेवाले गाय, बछड़े एवं भारवाहक पशुओंसे ही आशय है इत्यादि, इत्यादि।

इस सर्कुलरकी पूरी नकल स्व० लाला हरदेवसहायजीद्वारा लिखित अंग्रेजी-पुस्तक 'काउ वर्सेस नेहरू' दिसम्बर, १९५४ के संस्करणके पृष्ठ २४ पर दी गयी है, जिसका हिंदी-अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है—

संख्याः—एफ—१३-१५। ४०। ४९—एल
खाद्य मन्त्रालय,
भारत सरकार,
दिनाङ्क २० दिसम्बर, १९५०

प्रेषक—
श्री० के० एल० पंजाबी, आई० सी० एस०,
भारत सरकारके सचिव,
नयी दिल्ली.

पानेवाले—
सब राज्य सरकारें,

विषय—ढोरोंका वध

मुझे यह बतानेका निर्देश दिया गया है कि भारत सरकारकी जानकारीमें यह आया है कि कुछ राज्योंने गोवंश-के ढोरोंके वधपर सम्पूर्ण रूपसे निरोध लगा दिया है और दूसरे राज्य इसी प्रकार करनेपर विचार कर रहे हैं। इस सम्बन्धमें वैधानिक और आर्थिक दोनों पहलुओंपर पुनः विचार करना आवश्यक है। जहाँतक इस विषयपर वैधानिक पहलूका सम्बन्ध है, ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ राज्योंकी ऐसी धारणा है कि संविधानका भाव यह है कि ढोरोंका वध सम्पूर्ण रूपसे बंद कर दिया जाय। यहाँ यह बताना विषयसे बाहर नहीं होगा कि संविधानके भाग ४ के अनुच्छेद ४८ में, जो राज्यकी नीतिके सम्बन्धमें निदेशक तत्त्वोंका प्रतिपादन करता है, इस प्रकार लिखा गया है—

राज्य कृषि और पशुपालनको आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियोंसे संघटित करनेका प्रयास करेगा और विशेषतः गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक ढोरोंकी नस्लके परिरक्षण और सुधारनेके लिये तथा उनके वधका प्रतिरोध (निरोध) करनेके लिये अग्रसर होगा।

उपर्युक्त अनुच्छेदसे स्प. है कि वास्तविक भाव सब पशुओंके वधके सम्पूर्ण निरोधसे नहीं है, बल्कि गाय, बछड़े तथा अन्य दुधारू और वाहक ढोरोंके वध-निरोधसे है। निदेश, अनुच्छेदके दो मुख्य उपबन्धोंके अधीन है और एक प्रकारसे आनुषङ्गिक है अर्थात् (क) गायों, बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक ढोरोंकी नस्लका परिरक्षण और सुधार, (ख) उनके वधका निरोध। दुधारू और वाहक ढोरोंमें केवल वे ही शामिल हैं जो दूध देनेकी तथा वहन-कार्य करनेकी क्षमता रखते हैं अर्थात् उपयोगी ढोर। इस प्रकार संविधानद्वारा राज्यपर सब ढोरोंका सम्पूर्ण वध-निरोध-जैसा कोई भी दायित्व नहीं किया गया है।

आर्थिक पहलूसे ढोरोंके वधका सम्पूर्ण निरोध निरर्थक-सा होगा। यदि लागू किया गया तो देशमें निश्चय ही ढोरोंके संवर्द्धन और जीवन-स्तरमें गिरावट आयेगी। भारतमें विश्वके पशुओंकी सबसे अधिक संख्या है। जिसका १९४५ की पशु आबादीकी गणनाके अनुसार आज लगभग १३ करोड़ १७ लाख ढोर होंगे, जिनमें ४ करोड़ ७ लाख भैंस वंशके पशु शामिल नहीं हैं। भारत सरकारद्वारा नियुक्त 'पशु-परिरक्षण और सुधारक समिति (कैटल प्रिजर्वेशन एण्ड डवलपमेन्ट कमेटी) ने दर्शाया है कि कुल पशु-संख्याका १० प्रतिशत अर्थात् लगभग १ करोड़ ४० लाख पशु बेकार और अनुत्पादक हैं और दूध नहीं देते। ऐसे अनुपयोगी पशु अपने मालिकोंद्वारा आवारा छोड़ दिये जाते हैं कि जहाँ-तहाँसे अपना पेट भर लें। प्रतिपशु प्रतिदिन ८ पौण्ड सूखा चाराके हिसाबसे बेकार और अनुत्पादक पशुओंपर १ करोड़ ८२ लाख ५० हजार टन चारा चाहिये, जिसपर १० करोड़ २२ लाख रुपये

प्रतिवर्ष खर्च होंगे। यह अनुमान लगाया जाता है कि गोशाला और पिंजरापोलमें ३ लाख ६० हजार बेकार और अनुत्पादक पशु पाले जाते होंगे, जिनपर प्रतिवर्ष २ करोड़ ४० लाख रुपये खर्च होते होंगे। इतनी बड़ी संख्यामें अनुत्पादक पशुओंपर इतना बड़ा भारी यह खर्च उत्पादक पशुओंकी देखभाल और उनका पोषण असम्भव बना देता है जो दुधारू और वाहक पशुओंके लिये बहुत आवश्यक है। परिणाम यह होता है कि उत्पादक पशु भी जिनकी संख्या इतनी कम है, क्रमसे खराब होते जायँगे और उत्पादक नहीं रहेंगे।

निर्यातके दृष्टिकोणसे भी इसमें बहुत अधिक मात्रामें सार्थकता है। मारे हुए पशुओंके चमड़े मरे हुए पशुओंके चमड़ेसे कहीं अधिक अच्छे होते हैं और उनके ज्यादा दाम आते हैं। कत्ल उठ जानेसे सबसे बढ़िया चमड़ा जिसकी विदेशोंके बाजारसे बहुत ज्यादा कीमत मिलती है, मिलना बंद हो जायगा। कत्लपर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा देना निर्यातके व्यापारके लिये हानिकर होगा और अपने देशके चमड़ा कमानेके उद्योगके हितके विरुद्ध होगा।

उपर्युक्त बातोंको ध्यानमें रखते हुए भारत सरकार आशा करती है कि ढोरोंके वधपर सम्पूर्ण निरोधसे होनेवाले विपरीत परिणामोंको राज्य भी समझेंगे और देशके आर्थिक और अन्य हितोंके विचारसे अनुपयोगी और अनुत्पादक ढोरोंकी कत्लपर कोई भी वैधानिक नियन्त्रण नहीं लगाया जायगा। जिन राज्योंने अबतक सम्पूर्ण गोवध-बंदीका विधान बना दिया है, उनसे तदनुसार प्रर्थना की जाती है कि वे शीघ्र ही इसपर पुनर्विचार करें। अनुत्पादक निरर्थक पशुओंके रखनेके लिये पर्याप्त मात्रामें गोसदन बनाये बिना सम्पूर्ण गोवध-निरोध लगाना अनुचित होगा और उससे निश्चय ही देशके ढोरोंकी श्रेणी गिर जायगी।' (यहाँ सर्कुलर समाप्त हो जाता है)

इस सर्कुलरसे यह स्पष्ट हो जाता है कि पण्डितजीके प्रधान मन्त्रित्वमें भारत सरकारको अधिक चिन्ता इस बातकी रही कि अधिक कीमती बढ़िया चमड़ा निर्यात करके कैसे अधिक रुपये कमाये जायँ। जितनी छोटी उम्रका पशु होगा उतना ही बढ़िया चमड़ा होगा और अधिक कीमत लायेगा। इसलिये अनुपयोगी पशुओंकी कत्लके आड़में वास्तवमें युवा उपयोगी पशु और उनके बच्चे कत्ल होंगे तभी अधिक-से-अधिक कीमतवाला बढ़िया चमड़ा प्राप्त हो सकेगा।

क्योंकि पण्डितजी स्वयं मांसाहारी थे और गोमांससे भी उनको शायद परहेज न था, अतः बढ़िया मांस प्राप्त करनेके लिये भी अनुपयोगी पशुओंकी आड़में उपयोगी युवा पशु और उनके बच्चे ही कत्ल होने देना ही सम्भवतः उनको अभीष्ट होगा। उनकी बहिन श्रीकृष्णा नेहरू हाथीसिंहने स्पष्ट लिखा है कि घरमें गाय और सूअरके मांसके न आनेकी हालतमें वे भेड़के बच्चे और मुर्गीके बच्चोंसे काम चला लेते थे, भेड़ और मुर्गीसे नहीं।

चमड़े और मांससे धन या विदेशी मुद्राके लिये धन कमानेको दिन-पर-दिन नये-नये कसाईखाने खुलते जा रहे हैं। यहाँतक कि भगवान् श्रीकृष्णकी व्रजभूमिको भी वञ्चित नहीं छोड़ा गया। यदि भारत सरकार इस मामलेमें नहीं चेतती है तो उसका ध्यान आजसे ५५-५६ वर्ष पूर्व लिखे गये साकेतधामनिवासी राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरण गुप्तके निम्न शब्दोंकी ओर आकर्षित किया जाता है।

गो-माता कह रही हैं—

जारी रहा क्रम यदि यहाँ यों ही हमारे नाशका—
तो अस्त समझो सूर्य भारत-भाग्यके आकाशका।
जो तनिक हरियाली रही वह भी न रहने पायगी,
यह स्वर्ण-भारत-भूमि बस मरघट-मही बन जायगी॥
(भारत-भारती, वर्तमान खण्ड, ६८)

श्रीमैथिलीशरणजीने अपनी पुस्तकके इसी प्रसंगमें 'पाद-टिप्पणी'में लिखा है कि अलाउद्दीन खिलजीका हाल लिखते हुए राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द कहते हैं—

तवारीक फरिश्तामें लिखा है कि 'उस वक्त दिल्लीमें अबके हिसाबसे एक रुपयेका दो मन गेहूँ बिकता था और पौने चार मन जौ, साढ़े सात सेरकी मिसरी थी और तीस सेरका घी।'

(इतिहास तिमिरनाशक, पहला खण्ड, पृष्ठ २६)

अब तो ये बातें ऐसी लगती हैं जैसी आजसे ५० वर्ष पूर्व वायुयानकी बात लगा करती थी।

गीताप्रेस गोरखपुरसे प्रकाशित होनेवाले मासिक-पत्र हिंदी 'कल्याण'के दिसम्बर १९६६ के अङ्कके पृष्ठ १३९४ पर निम्नलिखित वर्णन सम्पादक महोदयने लिखा है—

जब मनुष्यकी बुद्धि तमसाच्छन्न होती है तब उसका सारा निर्णय विपरीत हुआ करता है—

सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।

—यही आसुरभाव है। इसीसे आज हमारे देशके गण्यमान्य शासक महानुभाव, हमारे अर्थशास्त्री कहलानेवाले लोग घोर हिंसाके कसाई व्यापारसे देशके संरक्षण और संवर्द्धनकी बात सोच रहे हैं। मुझे पता नहीं, कहाँ-तक सत्य है, पर यदि सत्य है, तो भयानक है।······ यह भी निश्चय किया गया बताते हैं कि चतुर्थ विकास (विनाश !) योजनामें ४ बड़े कसाईखाने, २५ मध्यम और १२८ छोटे कसाईखाने बनाये जायँगे और २० मांसके बाजारोंका नवीनीकरण होगा। इसके निमित्त १०,७४ करोड़ रुपयेकी धनराशि निर्धारित की गयी है······

कुछ वर्षों पूर्व मांस-उत्पादनकी सरकारी योजनाका एक विवरण कुछ पत्रोंमें छपा था, वह यदि सत्य है तो बड़ा ही भयानक है। वह निम्नलिखित है—

भारत-सरकारकी मांस-उत्पादनकी पञ्चवर्षीय योजना

समय	गोमांसका उत्पादन मनोंमें	अन्य सभी प्रकारके पशुओंके मांसका उत्पादन मनोंमें	मांसका कुल जोड़
१९६१ से १९६६ तक	१, १८, ७५, ०००	२, १५, ३७, ५००	३, ३४, १२, ५००
१९६७ से १९७१ तक	३, ९३, ७५, ०००	२, ५६, ७५, ०००	६, ५०, ५०, ०००
१९७२ से १९७६ तक	६, ९५, ६२, ५००	३, २४, ६२, ५००	१०, २०, २५, ०००
१९७७ से १९८१ तक	७, १२, ५०, ०००	४, ४२, ७५, ०००	११, ५५, २५, ०००

इस योजनाके अनुसार १९६७ से १९८१ तक १५ वर्षोंमें पाँच करोड़, तिरानवे लाख, पचहत्तर हजार (५, ९३, ७५, ०००) मन गोमांसका उत्पादन बढ़ना चाहिये। यदि यह योजना सत्य है (भगवान् करें—सर्वथा असत्य हो) तो लोगोंका यह समझना अयुक्त नहीं कहा जा सकता कि गोमांसके व्यापारकी वृद्धिके लिये ही सरकार गोवंशकी हत्या सर्वथा बंद करनेमें आनाकानी कर रही है।······

ऋषि-मुनियोंकी तपोभूमि, भगवान्‌की लीलाभूमि और संत-भक्तोंकी साधन-भूमि आज उसी पवित्र भूमिके तमोऽभिभूत निवासियोंके द्वारा मोहवश अत्यन्त विशाल 'वध-भूमि'—'निरीह-प्राणि-हत्या-भूमि' के रूपमें परिणत होने जा रही है! भगवान् ही रक्षा करें।

पशुओंमें गौ सबसे अधिक पवित्र है, वह हमारी पूजनीया माता है और वही आज हजारोंकी संख्यामें हम भारतीयोंके हाथोंसे ही प्रतिदिन निर्दयताके साथ काटी जा रही है······। कैसा भीषण दुर्दैव है। कितना घोर दुर्भाग्य है।

उपर्युक्त बातोंकी सत्यता 'अडहाक कमेटी आन स्लाटर हाउसेज एण्ड मीट इन्सपेक्शन प्रैक्टिसेज' (कसाई-खानों और मांसके निरीक्षणकी प्रणालियोंके लिये एतदर्थ नियुक्त की हुई कमेटी) की रिपोर्ट, जो भारत सरकारके खाद्य और कृषि-मन्त्रालयद्वारा १९५७—५८ में प्रकाशित हुई है—से भी प्रमाणित होती है, जिसका हिंदी-अनुवाद नीचे दिया जा रहा है—

गांधीजी और गोरक्षा—भारतमें गायकी हीन दशा—क्यों ?

परिच्छेद १, पृष्ठ १, पैरा १, १, १, २ और १, ३—

भारतवर्षमें २० करोड़से अधिक गोवंश, भैंसवंशके पशु, ३ करोड़ ८० लाख भेंड़े और ४ करोड़ ८० लाख बकरियाँ हैं। इस पशु-धनकी उत्पत्तिका भारतके अर्थमें वार्षिक योगदान कई हजार करोड़ रुपयोंका है।······ मांसके लिये कतल किये जानेवाले ढोरोंकी संख्या केवल ०.९ प्रतिशत है।······भेंड़-बकरियोंका मांस बहुत बड़ी मात्रामें काममें लाया जाता है, यहाँतक कि इस कार्यके लिये प्रतिवर्ष ३२॥ प्रतिशत भेड़ें और ३६ प्रतिशत बकरियाँ कतल की जाती हैं। विभिन्न प्रकारके मांसोंका वार्षिक उत्पादन इस प्रकार है, भेड़ोंका—१ लाख १० हजार टन, बकरियोंका—१॥ लाख टन, गोमांस—१ लाख २० हजार टन, भैंसोंका—९० हजार टन और सूअरोंका—२० हजार टन।

सब मिलाकर गोमांसका वार्षिक उत्पादन ४ लाख ६० हजार टनसे अधिक होगा, जिसकी कीमत ७६ करोड़ रुपयोंसे भी ज्यादा है। देशका विभाजन होनेके बाद

और विशेषकर हालमें कई राज्योंमें गोवंश-वध बंद कर देनेके कारण गोमांसका उत्पादन पर्याप्त मात्रामें घट गया है, तथापि बढ़ते हुए शहरोंकी माँग पूरी करनेको भेड़-बकरियोंके मांसका उत्पादन दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है।

बकरियोंकी खालके निर्यात-व्यापारमें भारतवर्षका अन्ताराष्ट्रीय बाजारोंमें सबसे ऊँचा स्थान है। भेड़-बकरियोंके कच्चे और कमाये हुए चमड़ेके निर्यातसे भारतवर्षको सालाना १७ करोड़से भी अधिक रुपये मिलते हैं।......

आगे चलकर उन कमेटीने पृष्ठ ४८ पर इन शब्दोंमें सिफारिश की है।

भारत सरकारको मांसके बने पदार्थोंके निर्यातको बढ़ानेके लिये सभी प्रकारके आवश्यक कदम उठाने चाहिये और उससे क्रीमती विदेशी मुद्राओंका अर्जन करना चाहिये। इत्यादि-इत्यादि........।

ऐसा भी सुननेमें आया है कि गतवर्ष किसी अन्ताराष्ट्रीय परामर्शदाता फर्मसे गोवंशके मांसके अभिसंस्कार (प्रोसेसिंग) करनेके लिये कोई छोटा-सा उद्योग स्थापनके लिये परामर्श लिया गया। इन विशेषज्ञोंकी टोलीने सब बातोंका विचार करके यह रिपोर्ट दी कि ऐसा उद्योग आर्थिक और टैक्निकल दृष्टिसे शक्य और उचित है। उन्होंने अनुमान लगाया है कि प्रतिदिन ३०० अनुत्पादक गोवंशके पशुओं (९३,००० पशु प्रतिवर्ष) अभिसंस्कार (प्रोसेसिंग) करनेके उद्योगके यन्त्रों (मशीनरी) में तथा कार्य-संचालनके लिये ४० लाख अमेरिकन डालरकी लागत होगी जो ४६ लाख डालर प्रतिवर्ष विदेशी मुद्रा पैदा करेगी। उन्होंने यह भी बताया है कि उनका अनुमान है कि आगे जाकर इस उद्योगको पूरी तरह विकसित किया जाय तो इससे एक बिलियन यू-एस. ए. डालरके बराबर विदेशी मुद्रा प्रतिवर्ष अर्जित हो सकती है। अंग्रेजी कोषके अनुसार यू. एस. ए. और यू. के. की बिलियन संख्यामें फर्क है। कोषके अनुसार अंग्रेजी बिलियन १ लाख करोड़के बराबर और अमेरिकन बिलियन १०० करोड़के बराबर होता है।

महात्माजीने हरिजन, १९।९।१९३७ (गांधीजी और गोरक्षा पृष्ठ १९) में लिखा है—

'कलकत्ता-जैसे शहरमें भी गायके दूधकी माँग है। हरियाणाकी सबसे बढ़िया नस्लकी गायें कलकत्ता ले जायी जाती हैं—लेकिन जैसे ही वे सूख जाती हैं उन्हें कसाईके हाथ बेच दिया जाता है। इसका नतीजा यह हुआ कि पंजाबमें हरियाणाकी गाय दुर्लभ होती जा रही है। गाय तो कसाईके हाथमें पड़नी ही नहीं चाहिये।'

संविधानके अनुच्छेद ४८ का—केवल दुधारू गाय, वाहक ढोरोंका वध ही रोकनेकी सिफारिश है—यह अर्थ माननेवाली भारत सरकारने पण्डितजीके प्रधान मन्त्रित्वमें इसको भी रोकनेकी चेष्टा नहीं की। न तो हरियाणासे अच्छी नस्लकी गायोंका निष्कासन बंद करवाया और न कलकत्तेमें उन गायोंका कतल रुकवाया।

'यंग इण्डिया', २९।१।१९२५ (गांधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ १८) में महात्माजीने लिखा था—

'मुझे बताया है कि अहमदाबाद-जैसे मालदार शहरमें भी ऐसे गरीब मजदूर हैं जिनकी पत्नियाँ अपने बच्चोंको पानीमें आटा घोलकर पिलाती हैं। इससे ज्यादा अफसोसकी और कोई बात नहीं हो सकती कि गरीबोंको पीनेको शुद्ध और बढ़िया दूध न मिले।'

यदि गोवंशके ह्रासका यही हाल बना रहा तो चुने हुए बड़े-बड़े मन्त्रीगण अथवा बहुत बड़े राजनीतिक सत्ताधारियोंको या बहुत बड़े धनाढ्योंको छोड़कर शायद ही किसीको शुद्ध और बढ़िया दूध मिल पावे।

पण्डितजीकी गोवंशके प्रति जैसी मनोवृत्ति रही है वह लोकसभामें 'भारतीय गोवंश-परिरक्षण-विधेयक' पर हुई बहससे भी स्पष्ट हो जाती है जो अप्रैल १९५५ में हुई थी और जिसकी रिपोर्ट लोक-सभाके डिबेट्स (बहस) के खण्ड (वोल्यूम) ३, भाग २ के पृष्ठ ४११५–४१५६ पर दी गयी है। उसका सारांश इस प्रकार है। पण्डितजी फरमा रहे हैं—

'मैं इस बातको स्वीकार नहीं कर सकता कि अर्थशास्त्रकी अपेक्षा पशुओंका अधिक महत्त्व है और मैं समझता हूँ कि गायोंकी अपेक्षा मानवका कहीं ज्यादा महत्त्व है। मैं सहमत नहीं हूँ और प्रधान-मन्त्रीके पदसे इस्तीफा देनेको तैयार हूँ, लेकिन मैं इस प्रकारकी बातोंके आगे झुक नहीं सकता।.....मैं इसको अच्छी प्रकार स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इसकी चर्चा व्यर्थ, मूर्खतापूर्ण और उपहासास्पद है।.....मैं और भी स्पष्ट कर देता हूँ कि सरकारका यही रुख है और इस मामलेपर सरकारकी नीति (पालसी) बिल्कुल स्पष्ट है।..... जो लोग अर्थशास्त्र और कृषिको नहीं समझते, उनको मेरी सलाह है कि वे ऐसा कार्य नहीं करें, जिससे हमारा पशुधन बर्बाद हो जायगा।.....'

यह जानते हुए भी कि कलकत्ता और बम्बई-जैसे शहरोंमें बढ़िया नस्लके दूध देनेवाले ढोर दिन-पर-दिन अधिक संख्यामें कसाईखाने जा रहे हैं और उससे धीरे-धीरे नस्लका बीज नष्ट होता जा रहा है तो भी इसके लिये कोई उपाय नहीं किया गया।

राज्य मिलनेके पूर्व देशी हिंदू-राज्योंमें कहीं भी कसाईखाना नहीं था और वहाँ गाँवों या शहरोंमें भी कभी अनुपयोगी पशुओंका प्रश्न नहीं उठा।

दिन-पर-दिन पशुओंकी दयनीय हालत इसीलिये होती जा रही है कि शहरोंमें रहनेवाले अधिकांशमें राजसत्ताधारी, राजनीतिक और धनीवर्गकी दूधकी माँग पूरी करनेकी सहूलियतके लिये बढ़िया नस्लकी गायें हजारोंकी संख्यामें आती हैं और दूध सूखनेके बाद साधनके अभावमें उस गायको बेच देना पड़ता है जो अन्तमें कसाईखाने पहुँचती हैं। इसमें दोष सरकारका अधिक है, जिसने इसपर कोई विचार या नियन्त्रण नहीं किया। वास्तवमें सरकार गौको 'धन' केवल कहती है, 'धन' समझती नहीं। यदि समझती तो इस तरह नष्ट और बर्बाद नहीं होने देती कि आज उसकी ऐसी दयनीय दशा हो गयी। धनीवर्ग तो अपने स्वार्थमें दूसरोंका हित सोचता नहीं। मोटरें तो दर्जनों रख लेंगे, किंतु गायके पालनेका साधन नहीं जुटा सकते। बड़े-बड़े करोड़ों-अरबों रुपयोंके उद्योगके साधन जुटा सकते हैं, लेकिन गोपालनका नहीं। गायका दूध चाहिये, बस, इतने तकका ही उनका उपयोग है। गोधन नष्ट होता जा रहा है, तो दूध और भी दुर्लभ हो जायगा, इसका विचार नहीं। केवल अर्थकी गणना होती है कि सूखी गायको खड़े-खड़े खिलानेमें जितना खर्च होगा, उतनेमें या उससे कममें दूधकी नयी गाय मिल जायगी। बलिहारी अर्थशास्त्रियोंकी। भगवान् इनको सुबुद्धि दें! (क्रमशः)

आजके सभ्य मानवकी राक्षसी प्रवृत्ति

[असंख्य निर्दोष जीवोंकी हत्या]

विश्वमें आजका मनुष्य गर्वसे कहता है कि वह उन्नतिके शिखरपर पहुँच रहा है। मानवसंस्कृति क्रमशः विकसित होकर आज मध्याह्नके सूर्यकी भाँति अपने प्रखर तथा प्रचण्ड प्रकाशसे सबको चकाचौंधमें डाल रही है। बात प्रकारान्तरसे सत्य है। कहते हैं कि पहले लोग देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये पशु-पक्षियोंकी बलि दिया करते थे। आज वैसी असभ्यता भरी बलि बन्द-सी हो गयी है—पर आज मनुष्यके स्वास्थ्यके नामपर सुसभ्य सुसंस्कृत मानवप्राणी (जीवदयासम्बन्धी कानूनकी मर्यादामें रहकर कानूनी अनुमति प्राप्त करके) जीवित इतर प्राणियोंपर घातक प्रयोग कर कैसे और कितनी भयानक संख्यामें उनकी बलि ले रहा है। इसपर ध्यान देनेकी वह आवश्यकता ही नहीं समझता; क्योंकि यह तो मानवके हितके लिये है और अत्यन्त प्रयोजनीय है! यह उसके विकासका प्रचण्ड प्रकाश ही तो है!

ब्रिटिश पार्लमेन्टकी एक पत्रिका ('टाइम्स' लन्दन, १४ । ८) में यह दिखाया गया है कि गत सन् १९६७ में जीवित प्राणियोंपर जो ऐसे घातक प्रयोग किये गये हैं—उनकी संख्या सन् १९६६ से कितनी बढ़ी है। १९६६ में ऐसी मानवकी रोग चिकित्साके उद्देश्यसे की जानेवाली नृशंस जीवहत्याकी संख्या थी—४६,१५,०२३ (छियालीस लाख पंद्रह हजार तेईस) जो १९६७ में बढ़कर हो गयी—४७,५५,६८० (सैंतालीस लाख पचपन हजार छः सौ अस्सी)। यह एक देशकी संख्या है। सभी सभ्य देशोंमें ऐसे प्रयोग होते हैं। सब मिलाकर कितनी बड़ी संख्या होगी? मनुष्यकी यह राक्षसी वृत्ति, जो उसके सहज स्वभावमें परिणत हो गयी है—कितनी भयंकर है? मनुष्य कहाँ जा रहा है—इससे कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

गोरक्षाके लिये नम्र निवेदन

"कल्याण"के गताङ्कमें 'गोरक्षा-आन्दोलन' शीर्षक लेखमें लिखा गया था, तदनुसार सरकारके द्वारा निर्मित 'गोरक्षा-समिति'से 'सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान-समिति'की ओरसे प्रेषित तीनों सदस्य—जगद्गुरु अनन्तश्री स्वामीजी श्रीनिरञ्जनदेव तीर्थजी–श्रीशंकराचार्य गोवर्धन-मठ, पुरी, श्रीमाधव सदाशिव गोलवलकर महोदय तथा श्रीरामप्रसाद मुकर्जी महाशय अलग हो गये। उन्होंने प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी तथा खाद्य एवं कृषि-मन्त्री श्रीजगजीवनरामजीको पत्र लिखकर सदस्यता-त्यागका कारण स्पष्ट बतला दिया। सरकार-द्वारा समितिका निर्माण किया गया था सम्पूर्ण गोवंश-वध-निषेध कानूनके निर्माणमें आनेवाली कठिनाइयोंको दूर करनेके सुझाव देनेके लिये, न कि गोवधके पूर्ण निषेध, आंशिक निषेध या 'अनिषेध' पर विचार तथा मत संग्रह करनेके लिये।

जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजीका आमरण अनशन त्याग करानेका अनुरोध करते समय सरकारकी ओरसे 'पूर्ण गोवंश-वधनिषेध कानून' बनानेका स्पष्ट आश्वासन दिया गया था। पं० श्रीकन्हैयालालजी मिश्र महोदय, एडवोकेट जनरल, उत्तर प्रदेशके द्वारा श्रीजगद्गुरुजीको सब बातें स्पष्ट कहलवायी गयी थीं। इसके अतिरिक्त गत ५ जनवरी सन् १९६७ तथा गत १ फरवरी १९६७ के सरकारी वक्तव्योंमें भी पूर्ण गोवंश-वधनिषेध कानून-निर्माणकी बात साफ कही गयी थी। तदनन्तर श्रीजगजीवनरामजीने तारीख २३ जून १९६७ को प्रो० श्रीरामसिंहजीको 'गोरक्षा-समितिके बाबत पत्र लिखा था। उसमें भी यह लिखा था कि—'प्रस्तावमें स्पष्ट रूपसे इस बातका उल्लेख होगा कि समिति ऐसे तरीकोंका सुझाव देगी, जिससे संविधानकी धारा ४८ का प्रभावी ढंगसे पालन किया जा सके तथा ऐसे सुझावपर भी पूर्ण विचार करेगी, जो गोवंश-हत्याको पूर्णतः बंद करनेके लिये संविधानमें संशोधनके सम्बन्धमें हो।

इन सब आश्वासनोंके दिये जानेके बाद भी सरकारी 'गोरक्षा-समिति'का रिपोर्ट देनेमें देर करना तथा 'वधनिषेध' 'अनिषेध' आदिपर विचार करनेका निश्चय प्रकट करना वास्तवमें देशके साथ सरकारका एक प्रकारसे विश्वासघात करना कहा जा सकता है। इस अवस्थामें 'गोरक्षामहाभियान-समिति'के सदस्योंका सरकारी समितिसे हट जाना तथा पुनः प्रबल आन्दोलनकी बात सोचना सर्वथा युक्तियुक्त और उचित ही है।

कर्तव्य-निर्णय तथा भावी आन्दोलनकी रूप-रेखा-पर विचार करनेके लिये देशके सभी दलोंके महानुभावोंका उज्जैनमें एक विशाल महान् सम्मेलन हो चुका है। ब्यावरमें एक गोरक्षा-सम्मेलन शीघ्र होने जा रहा है। इसके बाद नवम्बरके प्रथम सप्ताहमें दिल्लीमें एक महासम्मेलन करनेकी बात सोची जा रही है। उसमें देशके सभी विशिष्ट गोप्रेमियोंको सम्मिलित होना चाहिये।

गतवर्षके आन्दोलनका स्वरूप, विभिन्न मत-वादियोंकी इस विषयमें अपूर्व एकता तथा एक ही संस्थाके नामसे सम्पूर्ण गोवंश-वध निषेधकी प्रबल माँग, देशभरमें त्याग तथा बलिदानकी लहर, सत्याग्रह, शान्तप्रदर्शन तथा बारंबारके सरकारी आश्वासनों आदिको देखकर एक बार बहुतोंको यह आशा हो गयी थी कि ऋषि-मुनि-सेवित भारतवर्षकी पवित्र भूमि अब गोरक्तसिंचनके महान् पापसे सर्वथा मुक्त हो जायगी। पर गोरक्षा चाहनेवाले लोगोंके त्याग-बलिदानमें अवश्य ही कुछ कमी रह गयी। इसीके परिणामस्वरूप परस्परके पूर्ण सहयोगमें कुछ शिथिलता आ गयी। जनताका

उत्साह भङ्ग होने लगा और झुकती हुई सरकार पुनः अकड़कर मानो अपने दुराग्रहपर डट गयी। यह पुण्य-स्थल भारतके लिये घोर कलङ्ककी बात है। इस कलङ्कको धोकर भारतको इस घोर पापसे बचाना परमावश्यक है। सरकार तथा जनता दोनों ही भारतीय हैं। दोनोंका ही पुनीत कर्तव्य है। पर उस कर्तव्यको सरकार प्रायः पूर्णरूपसे तथा जनता भी बहुत अंशमें भूल रही है। अतः सरकार तथा जनता दोनोंको शान्ति तथा प्रेमसे जगाकर उन्हें कर्तव्यपर आरूढ़ करवाना है। इसके लिये समस्त कार्यकर्त्ताओंको परस्परके मतभेदोंको भुलाकर, दलोंके आग्रहको त्यागकर, श्रेयके सेहरेकी चिन्ता छोड़कर तन-मन-धनसे तुरंत लग जाना चाहिये—पूर्ण सावधानी तथा उमड़ते हुए उज्ज्वल तथा सात्त्विक उत्साहको लेकर कर्तव्यपालनमें। सभी लोग मनसे पूर्ण गोवंशकी रक्षाका संकल्प करें। इसके लिये अपने-अपने विश्वासके अनुसार मानस प्रार्थना, भगवदाराधन, देवाराधन आदि करें-करायें। धनवान् समुचितरूपसे उदारतापूर्वक धनसे सेवा करें। शरीरसे सब प्रकारका त्याग करके, कष्टसहनको तपस्या मानकर साधु, महात्मा, विद्वान् तथा जनसाधारण सत्याग्रह आदि आवश्यकतानुसार करें। द्वेष किसीसे कोई न करें। अमङ्गल किसीका कभी कोई न चाहें।

साथ ही गोपालन तथा गोसंवर्धनके उपयोगी रचनात्मक कार्य भी पूरे उत्साहसे किये जायँ।

हालमें ही नासिक कुम्भमेलाके अवसरपर स्वामीजी श्रीगवानन्द हरिजीके उद्योगसे तथा उनकी संयोजकतामें एक गोसेवा एवं गोसंवर्धन सम्मेलन सम्पन्न हुआ है। उसमें गोसेवा, गोपालन, गोसंवर्धन तथा सम्पूर्ण गोवंशहत्या-निषेध कानूनके सम्बन्धमें सुन्दर भाषण तथा उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए हैं। सर्वोत्तम तो यह था कि सभी महानुभाव एक ही प्लाटफार्मसे एक ही आवाज निकालते। अलग-अलग प्रयास न होता। पर दुर्भाग्यवश वैसा सम्भव न हो, तो एक ही उद्देश्यसे पृथक्-पृथक् प्रयत्न करें, पर सभीके सभी प्रयत्न हों—परस्पर यथाशक्य अधिकाधिक सहयोगसे, कम-से-कम आपसमें प्रेम रखते हुए! यह हमारा सभीसे साग्रह तथा सविनय निवेदन है।

प्रभुका हाथ पकड़ ले

प्रकृतिके प्रवाहमें पड़कर बहा जा रहा खोकर ज्ञान।
इधर-उधर गोते खाता चलता, होता नाहक हैरान॥
निकल तुरत प्रवाहसे, मत डर, लपक पकड़ ले, प्रभुका हाथ।
रहे पुकार, हाथ फैलाये, तुझे बचाने, चलते साथ॥
एक बार तू देख इधर, प्रभुका रक्षक कर वरद विशाल।
कैसे तुझे निकाल उठानेको है तत्पर बस, तत्काल॥
ताका जहाँ, उठा, आ बैठेगा तू दिव्य सुखद प्रभु-गोद।
छा जायेगा जीवनमें अनुपम शुचि भगवदीय आमोद॥

कामके पत्र

(१)

प्रेममें ज्ञान अनावश्यक

प्रिय महोदय ! सप्रेम हरिस्मरण । आपका पत्र मिला । यह सत्य है कि विशुद्ध भगवत्-प्रेममें ज्ञानको स्थान नहीं है और प्रेमीपर ज्ञानका कोई प्रभाव नहीं पड़ता; पर इसका अभिप्राय समझना आवश्यक है । प्रेमीमें ज्ञान नहीं रहता, इसका अर्थ यह नहीं कि उसमें ज्ञानका अभाव है वरं यह समझना चाहिये कि उसमें ज्ञानकी पूर्णता है । जहाँ ज्ञानकी पूर्णता है, वहाँ ज्ञानको और स्थान कहाँसे मिलेगा ? खाली घड़ेमें भी शब्द नहीं होता और जलसे पूरे भरे हुए घड़ेमें भी शब्द नहीं होता । पर यदि भरे घड़ेमें कोई जल और भरना चाहे तो कैसे भरेगा । वह तो नीचे ही गिरेगा । इसी प्रकार सच्चिदानन्दघन ज्ञानस्वरूप भगवान्‌में प्रेम करनेवाले भक्तको भगवान्‌की नित्य प्राप्ति होनेके कारण उसके लिये ज्ञानकी चर्चा व्यर्थ है । जहाँ अज्ञान है, वहाँ ज्ञानकी आवश्यकता है; जहाँ वियोग है वहाँ योगकी आवश्यकता है, पर जहाँ ज्ञानस्वरूप भगवान्‌की नित्य उपलब्धि है वहाँ 'ज्ञान'की तथा जहाँ भगवान्‌का नित्य संयोग है, वहाँ 'योग'की आवश्यकता नहीं है । वहाँ यदि कहीं बाहरसे ज्ञान और योग आते हैं तो वे मस्तक अवनत किये चुपचाप एक ओर छिपे खड़े रहते हैं ।

नित्य 'ज्ञानमय' 'नित्यज्ञान' जो नित्य 'ज्ञानके मूलाधार ।'
वे भगवान् प्राप्त हैं जिनको परम प्रेष्ठ बनकर साकार ॥
बाहर भीतर उनसे रहता बना एकरस जब संयोग ।
तब न प्रयोजन वहाँ ज्ञानका, न कुछ प्रयोजन रखता योग ॥

(शेष भगवत्कृपा)

(२)

भगवान्‌की प्रतिमा समझकर पतिका सेवन करें

प्रिय बहिन ! सप्रेम जय श्रीकृष्ण । आपका पत्र मिले कई दिन हो गये । मुझसे पत्रका उत्तर लिखनेमें प्रायः देर हो ही जाती है । आपको दुःख होता है, इसलिये क्षमा-याचना नहीं करता । आनन्दरसाम्बुधि, सौन्दर्यमाधुर्यनिधि व्रजराजकुमारमें आपका जो प्रेम है, वह सर्वथा सराहनीय है । मालूम होता है रसिकेन्द्रशिरोमणि श्रीकृष्णकी आप-पर बड़ी कृपा है ।

सब जीवोंमें भगवान्‌का प्रकाश देखना भगवत्कृपासे ही सम्भव है । ऐसा विचार तो बहुतोंको होता है; परंतु यथार्थ दर्शन विरले ही पाते हैं ।

आपके पत्रके उत्तरमें मेरा निम्नलिखित निवेदन है कि [मनुष्यको अपने प्रणकी रक्षा पूर्णरूपसे करनी चाहिये । इतना अवश्य है कि उसका प्रण शुभ और ज्ञानपूर्वक किया हुआ होना चाहिये । सो सांसारिक भोगोंसे चित्तको हटाकर अपनेको श्रीभगवान्‌के समर्पण करनेसे बढ़कर शुभ तो और क्या हो सकता है । हाँ, ज्ञानपूर्वकके सम्बन्धमें जरूर विचारणीय बात है । प्रण ज्ञानपूर्वक और दृढ़ होनेपर सम्बन्धी लोग जबरन विवाह कैसे कर सकते हैं ? उस समय दृढ़तापूर्वक अपनी असम्मति स्पष्ट दिखलानी चाहिये थी । परंतु विवाह हो जानेपर तो दो ही मार्ग रह जाते हैं—

(क) सहज परम-वैराग्यकी स्थितिमें तन-मनकी सांसारिक चेष्टाओंका स्वाभाविक त्याग अथवा (ख) गृहस्थमें रहकर अपने प्रत्येक कार्यके द्वारा परम पति श्रीभगवान्‌की पूजा । इसमें पहली बात तो स्वयमेव होती है । जब श्रीभगवान्‌के प्रेममें प्राण मत्त हो जाते हैं, भगवान्‌को छोड़कर अन्य कुछ भी ग्रहण करनेकी शक्ति ही आधारमें नहीं रह जाती, तब सबसे पर-वैराग्य होनेके कारण अपने-आप ही बाह्य सम्बन्धों तथा बाह्य चेष्टाओंका त्याग हो जाता है । इस अवस्थामें पति बनाने, न बनानेका प्रश्न ही नहीं रह जाता । दूसरे मार्गमें भगवान्‌की मङ्गलमयी प्रतिमाके रूपमें पतिकी पूजा की जाती है । क्षणभङ्गुर शरीरधारी जीव पति नहीं है, प्रकृतिके गुणोंसे परे, अखण्ड नित्य विज्ञानानन्दघन भगवान् श्यामसुन्दर ही पति हैं । पर जैसे काष्ठ, पाषाण, धातु आदिकी बनी मूर्तियाँ भगवान्‌का प्रतीक होती हैं, वैसे ही विवाहित पति यहाँपर भगवान्‌का प्रतीक होता है । जैसे प्रतिमाकी पूजा स्वयं भगवान्‌की ही पूजा होती है, वैसे ही सच्चिदानन्दघन श्यामसुन्दर पतिके लिये इस पाञ्चभौतिक हाड़मांसके शरीरधारी पतिकी पूजा होती है । इस पूजासे पूजा करनेवालीका प्रण भङ्ग नहीं होता । वैसे कहा जाय तो, जिस दिन विवाह हुआ, चाहे वह जबरन ही हुआ हो, उसी दिन प्रण भङ्ग हो गया । नहीं तो, अपने उपर्युक्त भावकी दृष्टिसे पतिके साथ रहनेपर भी प्रणका भङ्ग नहीं होता । पतिव्रत-धर्मका तो अवश्य ही पालन करना चाहिये । जो श्रीभगवान्‌को अपना पति मानती हैं, वे ही असली पतिव्रता हैं । वे किसी भोगलिप्सासे

सांसारिक पतिका सेवन नहीं करतीं। केवल सेवाके भावसे भगवत्प्रीत्यर्थ ही भगवान्‌की प्रतिमाके रूपमें उसका पूजन-सेवन करती हैं।

हाँ, चित्त न माने और उसमें दृढ़ता हो तो ब्रह्मचर्यकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये। ऐसी हालतमें यदि प्रार्थना करनेपर पति (मीराँजीके पतिकी भाँति) दूसरा विवाह कर लें, तब तो अपने आप ही सारा झगड़ा समाप्त हो गया। नहीं तो, दृढ़ताके साथ अपना भाव बताकर उनसे नम्र प्रार्थना करके अनुकूलता प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

हाँ, एक बात अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिये। घर छोड़कर अन्यत्र कहीं जाना बहुत ही भयकी बात है। आजकल सभी क्षेत्रोंमें और सभी प्रकारके लोगोंमें दाम्भिक मनुष्य भरे हैं। स्वतन्त्र रहकर कपटी और कुटिल मनुष्योंसे बचना बहुत कठिन है। साधु, महात्मा, ज्ञानी, भक्त, वैष्णव प्रेमी आदि सभी वेशों और नामोंमें बदमाश लोग घुस गये हैं और अपने बुरे आचरणोंसे इन पवित्र रूप और नामोंको कलंकित कर रहे हैं। अतएव आवेशमें आकर गृह-त्याग करनेका समय नहीं है। बहुत सोच-समझकर परिणामपर ध्यान देकर ही कोई काम करना चाहिये।

शेष भगवत्कृपा।

(३)

देशमें रोगवृद्धिके कारण

सम्मान्य महोदय !

सप्रेम हरिस्मरण।

आपका लिखना सत्य है। देशमें शारीरिक रोग बढ़ रहे हैं, घट नहीं रहे हैं। बहुत अधिक अस्पतालों—औषधालयोंका चलना, बड़े-बड़े औषध-निर्माणके कारखानोंका उत्तरोत्तर बढ़ना तथा सफलतापूर्वक उन्नति करना और बढ़ी संख्याके डाक्टर-वैद्योंको अवकाश न मिलना—जहाँ देशकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिये आदरणीय साधन हैं, वहाँ ये सब देशकी स्वस्थताके सूचक कदापि नहीं हैं, अस्वस्थता तथा रोगवृद्धिके ही सूचक हैं। रोगवृद्धिके निम्नलिखित कारण हैं।

संयमहीन उच्छृङ्खल जीवन, खान-पानकी भ्रष्टता, हरेककी जूँठन खाना, घनी बस्तियाँ, चलचित्रों (सिनेमा) की वृद्धि, मांस-अंडोंका भक्षण, मद्यपान, चाय, बरफ, आइसक्रीम, कोकाकोला, सिगरेट, बीड़ी आदिका बढ़ता प्रचार, दवा खानेकी बढ़ती हुई आदत—खास करके आजकलकी एण्टीबायटिक जहरीली दवाएँ, जो एक रोगके कीटाणुओंको नष्टकर दूसरे नये रोग-कीटाणु पैदा करती हैं। दर्दनाशक और नींदकी दवाइयाँ। एक बहुत अच्छे उच्च श्रेणीके डाक्टर महोदयने बताया था कि आजकल रोगके रोगियोंकी संख्या घट रही है और दवाके रोगियोंकी बुरी तरह बढ़ रही है।

मनमें भयानक विकार पैदा करनेवाले सिनेमाके अत्यधिक प्रसार, साथ ही ऐसे साहित्यका प्रचार भी बढ़ रहा है, जो मानस रोगपैदा करके शरीरके विभिन्न रोग बढ़ाता है। शरीरमें व्यर्थके वेग पैदा करता है, अपराधकी वृत्तियोंको उत्पन्न और संवर्धन करता है एवं चरित्रनाशका महान् हेतु बनता है।

इसीके साथ बाह्य श्रृंगारकी भावना, लोगोंको दिखानेके लिये सुन्दरताका दिखावा, लड़कियोंका बहुत चुस्त कपड़े पहनना, पुरुषोंको कौपीन या लँगोटी न पहनकर अथवा तीन लाँगकी धोती न पहनकर पाजामा, पेंट पहनना—ये सभी शारीरिक और मानसिक रोग बढ़ानेमें कारण हैं।

लोगोंमें लोभवृत्तिकी वृद्धिसे खानपानकी वस्तुओंमें रोग उत्पन्न करनेवाली चीजोंकी मिलावट, जीभके स्वादवश होटलों आदिमें गन्दे स्थान तथा गन्दे तौरपर बने हुए जूठे अपवित्र, रोगके कीटाणुओंसे युक्त पदार्थोंका सेवन भी मानस तथा शारीरिक रोगवृद्धिमें कारण है। ये सब चीजें जिस मात्रामें बढ़ रही हैं, उसे देखते तो ऐसा ही अनुमान होता है कि अभी देशमें मानस तथा शारीरिक रोग एवं उसीके साथ कष्ट-क्लेश बढ़ेंगे ही। आपने कारण पूछे सो संक्षेपमें लिखे गये हैं। इन सबपर तथा ऐसे ही अन्यान्य कारणोंपर गम्भीर विचारकी आवश्यकता है सरकार विचार करे। सरकारका स्वास्थ्य-विभाग खास तौरपर सोचे। और वस्तुतः विचार करके इससे बचनेके साधनोंको ढूँढना और उन्हें अपनाना तो है देशकी जनताको और उसके नेताओंको।

शेष भगवत्कृपा।

(४)

दहेजकी असमर्थताके कारण कन्या-विवाहमें बाधा

एक बहिनका और पत्र मिला है, जिसका बड़ी उम्र होनेपर भी दहेजकी असमर्थताके कारण विवाह नहीं हो पा रहा है। ऐसा एक पत्र ··········में छपा था। खेद है कि इन बहनोंने अपने नाम-पते नहीं लिखे। पहला पत्र छपनेके बाद हमारे पास बहुत-से पत्र आये, अब भी आते रहते हैं, जिनमें कई दहेज न लेकर विवाह करनेको प्रस्तुत युवकोंके तथा उनके अभिभावकोंके हैं। पर नाम-पता न होनेसे उन लोगोंको कुछ भी लिखा नहीं जा सका। अब उन बहिनोंसे निवेदन है कि यदि उनका विवाह न हुआ हो तो, वे अपने नाम-पते लिख दें। नाम-पते छापे नहीं जायँगे। केवल योग्य व्यक्तियोंको पत्रव्यवहारके लिये बताये जायँगे। —सम्पादक

(५)

दुष्ट संग जनि देइ विधाता

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण ! आपका कृपापत्र मिला था। आपने लिखा कि 'आप अमेरिकासे जबसे लौटे हैं, तबसे आपका चित्त पहलेकी अपेक्षा अधिक अशान्त है तथा आपका जीवन भी पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक संयमसे रहित तथा उच्छृङ्खल होता जा रहा है। पर इसके लिये मनमें काफी दुःख भी हो रहा है।' सो सत्य है। इसका कारण यह है कि आप वहाँके वातावरणके साथ अपनेको खपा नहीं पाये हैं। हमारा दुर्भाग्य है कि हम अपनी पवित्र प्राचीन संस्कृतिके मूर्तिमान्स्वरूप ऋषि-मुनि त्यागी पुरुषोंके द्वारा उपदिष्ट और आचरित पवित्र जीवनसे, शुद्ध आचरण तथा आदर्श चरित्रसे गिर रहे हैं और अमेरिका आदि भोगप्रधान, परंतु पतनोन्मुख देशोंके असंयमपूर्ण आचार-विचारको आदर्श मानकर उसका अन्धानुकरण करके अपने पवित्र गौरवमय पदसे च्युत होकर अशान्ति, विनाश, दुःख और पतनको जाग्रति, सुख, विकास और उत्थान मानकर अपने-आप ही अपना अकल्याण कर रहे हैं !

हमारी बुद्धि कुण्ठित या नष्ट हो रही है इसीलिये हमारा वर्त्तमान उच्छृङ्खल खान-पान, आमोद-प्रमोद, व्यवहार-बर्त्ताव, आचार-विचार, कर्तव्य-अधिकार, सेवा-उपकार आदि सभी इसी प्रकार पतनकी ओर ले जा रहे हैं। सिनेमा, गंदा साहित्य, अनुशासनहीन छात्रजीवन, स्वार्थप्रधान आचार्य-शिक्षकगण, धर्म-संयमहीन स्वार्थ-भोग-परायण नेता, साधु-भक्त, देश-भक्त आदि सब इसी बुद्धि-नाशके परिणाम हैं। जिसका फल सर्वनाश है। जिस अमेरिकाको आदर्श मानकर आप कुछ शिक्षा ग्रहण करने गये थे तथा हमारे बहुत-से विद्या-व्यसनी सहृदय-सज्जन तथा विद्यार्थी वहाँ आदर्श आचरण सीखने जाते हैं, उस अमेरिकाकी क्या दशा है, इसको नीचे दिये हुए विवरणको पढ़कर सोचिये।

"वाशिंगटन, अमेरिकाका समाचार है कि संयुक्तराज्य अमेरिकामें गतवर्ष 'दि फेडेरशन ब्यूरो आफ इन्वेस्टिगेशन'के कथनानुसार १६.५ प्रतिशत गम्भीर (Serious) और हिंसात्मक (violent) अपराधोंकी वृद्धि हुई है।

अपराधोंके वार्षिक विवरणमें कहा गया है कि प्रत्येक सौ अमेरिकनके पीछे दो व्यक्ति अर्थात् दो प्रतिशत व्यक्ति गम्भीर (Serious) अपराधोंके शिकार हुए हैं। फे० ब्यू० इ० ने कहा है कि प्रत्येक एक लाख मनुष्योंमें १९२२ मनुष्योंने गम्भीर अपराध लूटपाट और २५० हत्याएँ तथा दूसरे हिंसात्मक अपराध किये हैं।

सन् १९६० से अबतक अपराधोंकी संख्या ८९ प्रतिशत तक पहुँच गयी है, जब कि जनसंख्या केवल १० प्रतिशत ही बढ़ी है।

रिपोर्टमें कहा गया है कि गतवर्ष अनुमानतः १२०९० हत्याएँ की गयी हैं, जो १९६६ की अपेक्षा ११७० अधिक हैं। और गत दस वर्षोंमें सर्वाधिक है।"

इसी प्रकार अमेरिकामें दिनोंदिन आत्महत्या, मस्तिष्क-विकृति तथा घोर उन्मादके शिकार मनुष्योंकी संख्या भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

इससे प्रत्यक्ष प्रकट है कि वहाँ राग-द्वेष, द्रोह-वैर, हिंसा-प्रतिहिंसा, आसक्ति-कामना, असंतोष-असहिष्णुता आदि मानवताका नाश करनेवाले दोष बढ़ रहे हैं, इसीका परिणाम है—अपराधोंकी उत्तरोत्तर वृद्धि।

मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि अमेरिकामें सब बुराई-

ही-बुराई है, अच्छा कुछ है ही नहीं। अच्छा बहुत है, अच्छे लोग बहुत हैं। और अच्छी बात, अच्छी चीज सभीसे सीखनी—ग्रहण करनी चाहिये। पर वह तभी सम्भव है जब अपना जीवन केवल सद्वस्तुको ही ग्रहण करनेवाला हो तथा बाहरी वायुमण्डल भी पवित्र हो। नहीं तो, बुरी बात सीखने तथा ग्रहण करनेकी ही अधिक सम्भावना है। आप अपने ऊपर ही गम्भीरतासे विचार कीजिये।

दुःसङ्गः सर्वथैव त्याज्यः।

दुष्ट संग जनि देइ विधाता।

शेष भगवत्कृपा।

कुछ और भी लिखा है—

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

न्यायशास्त्रका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है दीधिति, जिसमें जो लिखा है, सो तो लिखा ही है, कुछ और भी लिखा है। वह 'और' लिखा तो ग्रन्थके एक-एक अक्षरके एक-एक कणमें है, किंतु सहज पढ़नेमें नहीं आता। विरले विनम्र-बुद्धि हृदयवान् पुरुष ही उसे पढ़ पाते हैं......पढ़ पाकर पढ़नेका सब कुछ पढ़ डालते हैं।

बंगालके नवद्वीप नगरकी बात है। न्यायशास्त्रके दो पण्डित······परस्पर सहपाठी एक दिन एक नौकापर सवार होकर गङ्गा-पार जा रहे थे। दोनोंने न्यायपर एक-एक ग्रन्थ रचा था। दोनोंके ग्रन्थ उस समय उनके साथ थे। एकने दूसरेसे अपना ग्रन्थ पढ़कर सुनानेका आग्रह किया। दूसरेने सहज सुनाना आरम्भ कर दिया।

कुछ अंश ही ग्रन्थका सुनाया गया था कि आग्रह-कर्ताके, जिसे अपने ग्रन्थपर गर्व था, नेत्र अश्रुपूर्ण हो आये। सुनानेवालेकी दृष्टि सहसा उसकी ओर गयी। सहपाठीको रोते देखकर, तुरंत ग्रन्थ सुनाना बंद करके अत्यधिक चिन्तित स्वरमें उसने उससे पूछा—'अरे भाई! यह क्या! रोते क्यों हो? हुआ क्या तुम्हें?'

कुछ नहीं—उत्तर दिया भरी हुई जबानसे श्रवण-कर्त्ताने—'यही सोचकर मेरे नेत्रोंमें आँसू आ गये कि तुम्हारे इस उत्तम ग्रन्थके रहते मेरे ग्रन्थको कौन पूछेगा? वह तो···अप्रतिष्ठित ही रहेगा···'ओह! इतनी-सी बातके लिये तुम चिन्तित हो रहे हो?······अश्रु बहा रहे हो! यह लो। चिन्ताका गङ्गा-प्रवाह हुआ। अब हँसो अविलम्ब!

और कहते-कहते जो ग्रन्थ सुनाया जा रहा था, वह सहज ही माँ भागीरथीके अनन्त प्रवाहमें प्रवाहित कर दिया गया!

श्रवणकर्ता पण्डित यह देखकर हका-बका रह गया। रोना तो उसका रुक ही गया; किंतु हँस भी नहीं सका वह। इन दोनोंसे ही ऊपर उठा और एकदम स्वर्गीय स्तब्धतामें रह गया वह तो अपने साथीके इस अपूर्व आत्मीयतापूरित अलौकिक त्याग एवं असीम औदार्यपूर्ण अतुलनीय कृत्यके दर्शन करके!

ग्रन्थको गङ्गाजीमें प्रवाहित करनेवाले थे निमाई पण्डित—(पीछेसे गौराङ्ग—चैतन्य महाप्रभु) और उनके साथी, जिनपर उनके असीम औदार्य, अलौकिक त्याग एवं अपूर्व आत्मीयताकी अनुपम वर्षा हुई थी, थे श्रीरघुनाथ श्रोत्रिय महाशय, जिनका ग्रन्थ 'दीधिति' आज भी प्रसिद्ध है।

हाँ—तो न्यायशास्त्रका एक ग्रन्थ है 'दीधिति,' जिसमें जो लिखा है, सो तो लिखा ही है, कुछ और भी लिखा है। वह 'और' लिखा तो ग्रन्थके एक-एक अक्षरके एक-एक कणमें है, किंतु सहज पढ़नेमें नहीं आता। विरले विनम्र-बुद्धि हृदयवान् पुरुष ही उसे पढ़ पाते हैं—पढ़ पाकर पढ़नेका सब कुछ पढ़ डालते हैं।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

बात लग गयी !

प्रायः देखा जाता है कि उच्चकोटिके विद्वान् वक्ता लोग उपदेश देकर संसारी जीवोंका उद्धार करनेके लिये सदासे प्रयत्न करते रहते हैं तथा श्रोतागण भी यह जानते, मानते भी हैं कि उपदेशक महोदय सब सत्य ही कहते हैं, तथापि उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पर कभी-कभी कोई अपरिचित व्यक्ति, जिसको दूसरेके प्रति उपदेश देनेका कोई अधिकार तथा कर्त्तव्य नहीं, ऐसी बात कह देता है, जिसका श्रोतापर अप्रत्याशित आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ जाता है। इसका कारण उस सूत्रधारकी इच्छाको ही मानना पड़ेगा, जो उस अभिनेतासे ऐसी चेष्टा करवाता है। ऐसी ही दो सत्य घटनाएँ नीचे दी जाती हैं—

१

कुछ धार्मिक वृत्तिका एक राजकर्मचारी दौरेपर एक पर्वतीय स्थानपर राज्यके कामसे गया था। दिनका कार्य समाप्त करके संध्याके समय वह घूमनेको निकला तो उसने सड़कके किनारे एक बंगलेके आँगनमें एक युवक संन्यासीको देखा कि वह एक गृहस्थपरिवारके साथ बैठा चाय पी रहा है और दो सुन्दर युवतियोंके साथ वार्तालाप कर रहा है। एक अधेड़ आयुकी स्त्री तथा एक बालक भी उनके साथ हैं। काषाय वस्त्रके प्रति उसके मनमें आदरभाव था; किंतु युवक महात्माका उन युवतियोंके साथ निःसंकोच वार्तालाप करना उसको अच्छा नहीं लगा। वह आगे बढ़ गया और लौटते समय कौतूहलवश उनके वार्तालापपर ध्यान दिया तो उसे अनुमान हुआ कि ये महात्मा उस परिवारके साथ ही पहाड़पर आये हैं और वे बालाएँ इनसे गीता पढ़ती हैं।

दूसरे दिन भी वही दृश्य दिखलायी दिया। तीसरे दिन जब वह उधरसे निकला तो उसे महात्मा नहीं दिखायी दिये। उसने फाटकके समीप खड़ी एक लड़कीसे पूछा—'महात्माजी कहाँ हैं।' यह सुनकर उसने वहाँ खड़े-खड़े ही —'स्वामीजी ! आपसे मिलनेके लिये एक साहब आये हैं।' पुकारा। महात्माजी सुनकर अंदरसे निकले और फाटकपर आ गये तथा एक अपरिचित व्यक्तिको देखकर कुछ ठिठक-से गये।

कर्मचारीने महात्माजीको नमस्कार किया और पास बुलाकर कहा—'महाराजजी ! कोई भी व्यक्ति यदि चोरी करे और वह पकड़ा जाय तो राज्यकी ओरसे उसको दण्ड दिये जानेका विधान है। चोरी करनेवाला कदाचित् पुलिसका सिपाही हो तो उसको अधिक दण्ड मिलेगा और यदि वह पुलिसकी वर्दी पहने हुए हो तो उसको और भी अधिक दण्ड मिलेगा एवं यदि वह गश्तपर (कर्त्तव्य पालनके लिये) आया होगा तो फिर तो उसको दण्डनीतिमें जो अधिक-से-अधिक दण्ड होगा, वही उसे दिया जायगा।'

कर्मचारी इतना कहकर चला गया। अगले दिन वह उधर नहीं आया। फिर जब वह उधर आया तो महात्माजी नहीं दिखलायी दिये। एक बालाने उक्त कर्मचारीको देखकर दूसरीसे कहा कि 'यह वही साहब जा रहा है, जिसके कुछ कहनेपर हमारा स्वामी चला गया था।'

कर्मचारीके ऐसा कहनेपर तरुण संन्यासी बाबा क्यों चले गये ? इसका उत्तर वे विश्वनियन्ता दे सकते हैं, जिन्होंने किसी प्रकारके परिचय तथा सम्बन्धके बिना ही कर्मचारीसे यह पहेली कहलवा दी और संन्यासी बाबाको इसका तात्पर्य भी समझा दिया। श्रीगुरु नानक देवजीके वचन है—

'करे करावे आपे आप। मानुसके कुछ नहीं हात।'

२

संसारमें सुख नहीं, जिसे देखो—किसी-न-किसी दुःखसे पीड़ित है। इसका कारण श्रीभगवान्ने काम यानी कामनाको बताया है—

> आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
> कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥
> (गीता ३ । ३९)

ज्ञानियोंके नित्य वैरी, अग्निकी भाँति कभी तृप्त न होनेवाली कामनाने ही ज्ञानको ढक रक्खा है, जिससे मानव दुखी रहता है।

एक आयकर-अधिकारी आय-करके सम्बन्धमें एक व्यापारी सज्जनका बयान लिख रहे थे। अधिकारीने उनसे पूछा—'आपके कितने पुत्र हैं और उनके क्या-क्या नाम हैं ?' यह इसलिये पूछा कि कई व्यापारी आय छिपानेके लिये पुत्रोंके नामपर जमा-खर्च कर दिया करते थे। उस व्यापारीके कोई पुत्र नहीं था। पुत्रैषणा उसको जलाये डालती थी। वह अत्यन्त दुखी था। इस प्रश्नसे उसकी मानसिक ज्वाला और भी धधक उठी, जिसको शान्त करनेके लिये उसकी आँखोंमें जल आ गया। उसने बड़ी व्यथासे लंबा श्वास छोड़ते हुए कहा—'मेरे कोई संतान नहीं है।'

अधिकारीने उनको सान्त्वना देते हुए कहा—'तब तो आप बड़े भाग्यशाली हैं और आपपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है।' व्यापारी अपने-आपको कर्महीन समझता था। उसने यह उलटी बात सुनकर पूछा—'कैसे ?' अधिकारीने उत्तर दिया कि 'यह सभी विचारशील लोग मानते हैं कि मनुष्य-जीवनका सच्चा उद्देश्य प्रभु-प्राप्ति है, जिसके पथमें मोह एक बहुत बड़ा विघ्न है। यह पुत्रोंका मोह ही है, जो उनकी सुख-सुविधाके लिये मनुष्य पापसे धन कमाकर छोड़ जाना चाहता है और उसका फल नरक होता है। पुत्र पिताको कितना सुख देते हैं—यह आप अपने पड़ोसी सेठ अमुक-चन्दकी स्थिति देखकर समझ सकते हैं। उनके तीन पुत्र हैं—बड़ा वेश्यागामी है, उसने अपनी साध्वी स्त्रीको छोड़ रक्खा है। मँझला राजयक्ष्माका रोगी है और छोटा दुष्ट है। आप स्वयं देखते हैं कि वह पिताको गाली ही नहीं देता, पीट भी देता है। आपको प्रभुने इन सभी दुःखोंसे बचा लिया और वे चाहते हैं कि आप उनका भजन-पूजन करके जन्म सफल कर लें।'

व्यापारीने कहा—'बात तो आपकी सत्य प्रतीत होती है, किंतु मुझे भजन-पूजन करना आता नहीं, मैं क्या करूँ ?' अधिकारीने पूछा—'जब आप दूकानका सामान खरीदने बाहर जाते हैं, तब दूकान बंद करके जाते हैं ?' व्यापारीने कहा—'नहीं, मेरा मुनीम अच्छा विश्वासपात्र है, वह दूकान चला लेता है।' तब अधिकारीने कहा—'सुनिये, अब चार-पाँच दिनोंमें होलाष्टक आनेवाला है। आप दूकानसे आठ-दस दिनकी छुट्टी लेकर अपनी धर्मपत्नीको साथ लीजिये और व्रजभूमिकी यात्रा कर आइये। पहले बरसाना-नंदगाँवकी लट्ठमार होलीका आनन्द लूटिये। फिर वृन्दावनमें जाकर रासोंके दर्शनका सुख प्राप्त कीजिये। तदनन्तर गोकुल, दाऊजीके दर्शन कर गोवर्धनजीके दर्शन कीजिये और बन पड़े तो गिरिराजजीकी परिक्रमा कर लीजिये। तथा वहाँ दीन-दुखियोंकी सेवा करके लौट आइये।' सेठजी अधिकारीका धन्यवाद करके काम पूरा होनेपर घर चले गये। महीने-दो-महीने पश्चात् एक दिन वे अधिकारी उस बाजारसे निकले तो सेठजीने उनको देख लिया। उन्होंने गद्दीसे उतरकर अधिकारीके चरणोंको छूना चाहा। अधिकारी उस दिनकी बातको भूल गये थे। वे घबराकर कहने लगे—'क्या बात है ? ऐसा क्यों कर रहे हैं ? देखनेवाले क्या कहेंगे ?' सेठजीने कहा—'मैं आपका वाणीसे धन्यवाद नहीं कर सकता। आपने तो मुझे स्वर्गका मार्ग दिखा दिया। हम दोनों पंद्रह दिन व्रजमें रहे। नौकर साथ ले गये थे। वह रसोई बना लेता था और हमलोग भगवान्‌के दर्शन करना, रास देखना, कथा-कीर्तन और सत्संगमें शामिल होना आदि कार्योंमें लगे रहते थे। हमने श्रीउड़ियाबाबा, श्रीहरिबाबा और दूसरे संत-महात्माओंके दर्शन किये। ऐसा सुख मिला, जैसा पहले कभी मिला ही नहीं था।

—निरञ्जनदास धीर

(२)

स्कूलकी मित्रता

हरश्यामकी पत्नी बुरी तरह बीमार थी। घरमें दो छोटे-छोटे बच्चे थे। बीमारीपर हरश्यामका बचाया हुआ रुपया भी धीरे-धीरे लग रहा था और अन्तमें जमा की हुई सारी पूँजी समाप्त हो गयी और उसके ऊपर ऋण भी हो गया। दिनभर हरश्याम इसी चिन्तामें रहता था। इन्हीं सब झंझटोंके कारण ही उसकी नौकरी भी छूट गयी थी। और वास्तवमें यह नितान्त गरीबी ही उसकी स्त्रीकी बीमारीका प्रमुख कारण थी—उसके पिताने उसे बी० ए० तक पढ़ाया था। पाँच साल हुए पिता भी चल बसे थे। नौकरी छूट जाने और ऋण हो जानेपर वह सर्वथा निराश हो गया। इधर चिन्ताके कारण उसका अपना स्वास्थ्य भी बिगड़ रहा था। नौकरी कहीं नहीं लग रही थी। घरमें कुछ खानेको नहीं—ऊपरसे बच्चोंको पालना, बीमार पत्नीकी देख-रेख करना। वह परेशान था—क्या करे, क्या न करे ?

आखिर एक दिन वह बहुत तंग आकर नौकरीकी तलाशमें निकल पड़ा। किसीसे पता चला कि लोहेके एक व्यापारीके यहाँ कुछ आदमियोंकी आवश्यकताका विज्ञापन निकला है। वह पता लगाकर वहाँ पहुँचा और अंदर जाकर क्लर्कसे मिला। दरख्वास्त लिखी और फर्मके मालिकके पास भेज दी। हरश्याम बाहर बैठा रहा। इतनेमें मालिकने उसे अपने पास भीतर बुलाया। वह गया। फर्मके मालिकका नाम था ईश्वरचन्द। हरश्याम उसके कमरेमें जाकर खड़ा हो गया। ईश्वरचन्द उसे बड़े ध्यानसे देखने लगा। फिर वह सहसा उठकर हरश्यामके गले लगकर मिलने लगा। हरश्याम हक्का-बक्का रह गया। ईश्वरचन्दने

उसे पकड़कर अपने पास कुर्सीपर बैठाया और कहा—'भैया हरश्याम ! तुम मुझे भूल गये क्या ? हमलोग दसवीं कक्षामें साथ-साथ पढ़ते थे । तुम मुझे बहुत प्यार करते थे । एक दिन मेरी पेन खो गयी थी, मुझे जरूरी सवाल करने थे । मेरा उदास चेहरा देखकर तुमने अपनी पेन मुझे दी थी, फिर तो तुम इसके पश्चात् सदा ही मुझे बहुत प्यार करते थे । हाईस्कूल छोड़नेपर मैं बम्बई चला गया । वहाँ मैंने एम्० ए० पास किया । फिर यहाँ लौटनेपर मुझे भयानक चेचक निकली । उसीसे तुम मुझे नहीं पहचान सके; क्योंकि चेचकने मेरी शक्ल ही बदल दी । मैंने बम्बईसे वापस आकर दिल्लीमें नया व्यापार शुरू किया । भगवान्‌की बड़ी दया हुई, जो आज भैया ! तुम मुझे मिल गये । मुझे कितना आनन्द हो रहा है, मैं कैसे बताऊँ ।' यों कहकर ईश्वरचन्द बड़े स्नेहसे हरश्यामकी ओर देखने लगे । उनकी आँखोंमें आँसू छलक आये थे !

फिर पूछनेपर हरश्यामने अपनी सारी रामकहानी सुनायी । ईश्वरचन्द उसकी दुःखद स्थिति सुनकर रोने लगे और बोले—'भाई हरश्याम ! तुम यहाँ रहो और अपना काम सँभालो ! मैं तुम्हारा छोटा भाई हूँ । आजसे तुम्हीं फर्मके मालिक हो ।' बहुत आग्रह करके ईश्वरचन्दने पत्नी-बच्चोंसहित हरश्यामको घर बुला लिया । हरश्यामकी पत्नी-का इलाज भी अच्छे-से-अच्छे डाक्टरोंद्वारा होने लगा, जिससे स्थितिमें सुधार होने लगा और वह शीघ्र ही लगभग स्वस्थ हो गयी ।

फिर ईश्वरचन्दने फर्ममें भी हरश्यामका हिस्सा कर दिया और परिवारसहित उसको ठीक अपने समान रहन-सहनसे रखने लगे । हरश्यामकी देख-रेखमें व्यापार और भी चमक उठा । ईश्वरचन्दने उसे अपने बड़े भाईकी तरह रक्खा और अपनी और उसकी स्कूलकी मित्रता और पेनकी बात याद करके उसकी सहज सेवा की ।

धन्य हैं ऐसे मित्र ! आजकलके स्वार्थी युगमें, जब कि सगा भाई भी भाईको अपना भाई नहीं मानता, केवल पैसेको ही प्रधान वस्तु मानता है, ऐसा आदर्श उदाहरण मिलना बड़ा कठिन है ।

ऐसे व्यक्ति धन्य हैं और धन्य हैं उनको जन्म देनेवाली माता ।

—सुरेन्द्रकुमार जैन

(३)

सच्ची समझदारी

छगन पटेलका उसके पड़ोसीके साथ वर्षोंसे वैर चला आ रहा था । ढोर एक दूसरेके खेतमें चले जायँ, बाड़ इधर-उधर हुआ करे और झगड़ा चला करे । जरा भी मनका मेल नहीं । गाँवके लोगोंने समझाने-बुझानेका प्रयत्न किया; पर सब निष्फल गया । दोनों पड़ोसी एक दूसरेको फँसानेके प्रयत्नमें लगे रहते थे ।

गरमियोंकी दुपहरकी बरसती लूमें छगन पटेल घूमता हुआ खेतपर आ निकला । उसने बाड़ेके अंदर प्रवेश करते ही देखा—उसके आमके पेड़से पड़ोसीकी बहूने कच्चे आम तोड़कर उनसे टोकरी भर रक्खी है । उसने भी बाड़ेमें घुसते छगन पटेलको देख लिया । वह समझ गयी कि आज तो चोरी करती माल समेत रँगे हाथों पकड़ी गयी है । अतएव घूँघट निकालकर काँपती हुई खड़ी रह गयी ।

पटेलने सोचा 'आज ठीक दाव लगा है । अनधिकार प्रवेश और चोरीका अभियोग लगाकर जीवनभरकी जलन मिटा दूँगा ।' पर दूसरे ही क्षण उसके मस्तिष्कमें सहसा प्रकाश आया । उसने टोकरीके पास आकर कहा—'इतने आम कैसे उठाओगी, लाओ मैं टोकरी उठा दूँ ।' इतना कहकर उसने चुपचाप टोकरी उठाकर उसके सिरपर रखनेमें मदद की । बहू चुपचाप टोकरी लेकर चली गयी ।

दूसरे ही दिन पड़ोसीने बिना कुछ कहे-सुने अपने खेतकी बाड़ निकाल दी और वर्षोंका झगड़ा मिट जानेसे दोनोंके सम्बन्ध सुधर गये ।

इस प्रसङ्गका वर्णन करते हुए छगन पटेलने कहा—'मैंने सोचा कि मुकदमा करनेपर पीढ़ियोंतक वैर चलेगा और दो रुपयोंके आमके लिये हम दोनों कचहरी और वकीलोंमें फँस जायँगे । अन्तमें जो हुआ सो अच्छा ही हुआ । वैर तो बढ़ाये बढ़ता है, घटाये घटता है ।'

छगन पटेलकी यह बात सौ टंचके सोने-जैसी है । इसीमें सच्ची समझदारी बसी है । (अखण्ड आनन्द)

—दीनानाथ सो० व्यास

एक आवश्यक सूचना

कुछ सूत्रोंद्वारा यह पता चला है कि मथुरा (उत्तरप्रदेश) के एक प्रेसवाले, गीताप्रेससे प्रकाशित—बालपोथी (शिशुपाठ) भाग-१ तथा रामचरितमानस (रामायण) गुटका, गीताप्रेसके नामसे ही छापकर बेचते हैं, जो कि सर्वथा गैरकानूनी, अनधिकार और अनुचित कार्य है। इस प्रेस और इसके मालिकका ठीक-ठीक पता लगनेपर, उनके इस कार्यके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जा सकती है। 'कल्याण' तथा गीताप्रेसके सभी प्रेमी ग्राहकों तथा गीताप्रेसके प्रति प्रेम रखनेवाले न्यायप्रिय कृपालु सज्जनोंसे निवेदन है कि वे इस प्रकारका अनुचित कार्य करनेवाले प्रेसका पता लगाकर हमें सूचना देनेकी कृपा करेंगे जिससे कि इस गैरकानूनी अनधिकार चेष्टाके विरुद्ध आवश्यक कार्यवाही की जा सके।

सभी पुस्तकविक्रेताओंसे हमारा अनुरोध है कि वे न तो उस प्रेसमें छपी पुस्तकोंको स्टाकमें रखें और न उन्हें बेचें ही; क्योंकि जाली पुस्तकोंका रखना-बेचना भी कानूनी अपराध तथा नैतिक पतन है। वरं ऐसी पुस्तकें कोई उनके द्वारा बिकवाना चाहे तो वे तुरंत उसके नाम-पते सहित हमें सूचना देनेकी कृपा करें।

इन जाली पुस्तकोंमें कागज खराब है तथा छपाई भी रद्दी है। गीताप्रेसके नामपर ऐसी पुस्तकोंका बेचना गीताप्रेसको बदनाम करनेके साथ ही स्वार्थ-साधनाका अनुचित प्रयत्न है जो तत्काल बंद होना चाहिये। हमारा प्रेमी ग्राहकोंसे निवेदन है कि वे पुस्तक खरीदनेसे पहले अच्छी तरह देख लें और जाली पुस्तकोंको न खरीदें।

तीन अनुपम पुस्तकें !

श्रीराधा-माधवचिन्तन

(लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

सचित्र, सजिल्द, पृष्ठ ७७६, मूल्य ५.०० डाकखर्च १.६५

इसमें श्रीराधा-माधवका महत्त्व-स्वरूप-तत्त्व, श्रीराधाकृष्णकी अभिन्नता, श्रीराधाकी दिव्य प्रेमसाधना, श्रीराधाके परम भावकी कई दिव्य झाँकियाँ, श्रीकृष्णके पूर्णब्रह्म भगवान् होनेका निरूपण, श्रीराधाके प्रति भगवान् श्रीकृष्णका तत्त्वोपदेश, भगवत्प्रेमका स्वरूप तथा उसकी प्राप्तिके सुलभ साधन, श्यामको रिझानेके उपाय, प्रेमतत्त्व, युगलतत्त्व आदि अनेक आध्यात्मिक पवित्र प्रेम-सम्बन्धी सुन्दर विवेचन हैं।

श्रीजैमिनीय-अश्वमेधपर्व, मूल श्लोक हिंदी-अनुवादसहित

सचित्र, सजिल्द, पृष्ठ ४०८, बड़ा साइज, मूल्य ६.०० डाकखर्च १.७०

इसमें भगवान् व्यासके शिष्य महर्षि जैमिनिजीके द्वारा परीक्षित्-पुत्र जनमेजयके प्रति उपदिष्ट, श्रीकृष्ण-कालीन भक्त राजाओंके मङ्गल चरित्रोंका वर्णन, परमभक्त राजा युवनाश्व, राजकुमार प्रवीर, नीलध्वज, भक्त सुधन्वा, सुरथ, वृषकेतु, राजा हंसध्वज, बभ्रुवाहन, नागकन्या उलूपी, कुश-लवोपाख्यान, अर्जुनका शिरश्छेद और भगवान्‌की कृपासे शिरका पुनः रणभूमिमें वापस आना, राजा युधिष्ठिरका अश्वमेधयज्ञ, यज्ञकी समाप्तिपर स्वर्ण-नकुलका आना आदि अनेक विषयोंका बड़ा ही सुन्दर, कल्याणप्रद ऐतिहासिक वर्णन है।

सनत्सुजातीय शाङ्करभाष्य, मूल श्लोक, श्रीशंकराचार्यकृत भाष्य और हिंदी-अनुवाद

सचित्र, सजिल्द, पृष्ठ १३०, मूल्य २.५० डाकखर्च १.२५

इसमें अमरत्वके विभिन्न रूप, अप्रमाद ही अमरत्व है, वास्तविक मृत्यु प्रमाद है, देहासक्ति पतनका हेतु है, विषयी जीवोंके जीवनकी व्यर्थता, मृत्युनाशका उपाय, जीवसृष्टि अनादि और मायिक है, धर्म और अधर्ममें कौन किसका घातक है, ज्ञानीका आचरण, आत्माकी दुर्बोधता, अगूढ़चारीकी निन्दा, आत्मज्ञानीकी शोकरहित स्थिति आदि अनेक आत्मज्ञान करानेवाले साधनोंका विवेचन है।

तीनों पुस्तकें एक साथ मँगानेवाले सज्जन डाकखर्चसहित सिर्फ १५.०० रुपये मात्र भेजकर मँगवा लें।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा लिखित तीन पुस्तकें प्रकाशित हो गयीं !

ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री

आकार २०×३०—१६ पेजी, पृष्ठ-संख्या ५८, मूल्य २० पैसा, डाकखर्च १० पैसा।

वर्तमान धर्म-विरोधी वातावरण तथा धर्महीन शिक्षा आदि कारणोंसे लोग ब्रह्मचर्यके महत्त्वको भूलकर यथेच्छाचारी बने जा रहे हैं और द्विजातिके लोग भी संध्योपासना तथा गायत्रीजप आदि अनिवार्य रूपसे आवश्यक नित्यकर्मका परित्याग कर पतित हुए जा रहे हैं, ऐसी दुःस्थितिमें किसी अंशमें रक्षा हो, इसी उद्देश्यसे 'ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री'पर परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके लेखोंका संग्रह इस छोटी-सी पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। पाठक इससे स्वयं लाभ उठावें तथा दूसरोंमें इन भावोंके प्रचारके लिये प्रयास करें—यह नम्र निवेदन है।

भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारी-धर्म

आकार २०×३०—१६ पेजी, पृष्ठ-संख्या ४४, मूल्य १५ पैसा, डाकखर्च १० पैसा।

परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने समय-समयपर विभिन्न विषयोंपर जो लेख लिखे हैं, वे बड़े ही कल्याणकारी हैं। उनमेंसे बहुत-से निबन्ध कई ग्रन्थोंके रूपमें प्रकाशित हो चुके हैं और उनसे लोगोंमें सद्भावोंका प्रसार अनवरत हो रहा है। कई महानुभावोंका सदासे ही यह सदाग्रह रहा है कि एक-एक विषयपर प्रकाश डालनेवाले श्रीगोयन्दकाजीके लेखोंको छोटी-छोटी पुस्तिकाओंके रूपमें प्रकाशित किया जाय, जिससे जनसाधारण उक्त विषयपर उनके विचार जानकर तदनुसार सत्पथपर अग्रसर हो सकें। ऐसी कुछ पुस्तिकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। यह 'भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारी-धर्म' भी वैसा ही एक प्रयास है। इससे आशा है कि सुधारके नामपर विनाशके पथकी ओर ललचायी आँखोंसे देखनेवाली हमारी भारतीय देवियोंमेंसे कुछ तो अवश्य ही अपने गौरवमय स्वरूप तथा कर्तव्यका स्मरण करके अपने स्वरूपकी रक्षा करनेमें समर्थ होंगी।—भगवान् सबको सद्बुद्धि प्रदान करें।

तीन आदर्श देवियाँ

आकार २०×३०—१६ पेजी, पृष्ठ-संख्या ३२, मूल्य १२ पैसा, डाकखर्च १० पैसा।

इसमें परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने देवी कुन्ती, देवी द्रौपदी और देवी गान्धारी—इन तीन आदर्श भारतीय देवियोंके उच्च चरित्रोंपर कुछ विचार प्रकट किये हैं। हमारी भारतीय नारियाँ इन देवियोंके आदर्श गुणों तथा आचारोंसे शिक्षा ग्रहणकर अपने कर्तव्यपथपर अग्रसर हों, इसी उद्देश्यसे इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-सङ्घके सदस्योंसे निवेदन

इस संस्थाके द्वारा श्रीगीताके ५ प्रकारके और श्रीरामायणके ३ प्रकारके सदस्य बनाकर श्रीगीता और श्रीरामायणके अध्ययन एवं उपासना करनेके लिये प्रेरणा की जाती है। अपने सदस्योंको सालभरमें एक बार सूचना-कार्ड भेजकर यह पूछा जाता है कि आपका पाठ चालू है या नहीं ? यदि किसी कारणवश पाठ बंद हो गया हो तो फिरसे चालू करनेकी प्रार्थना की जाती है। कई हजार सदस्योंने अभीतक उत्तर नहीं भेजा है। अतः पुनः प्रार्थना है कि जिन सदस्योंने अभीतक उत्तर नहीं दिया है, वे शीघ्र उत्तर देनेकी कृपा करें ताकि उनके नामके सामने 'पाठ चालू'का चिह्न लगाया जा सके। साथ ही वे अपनी सदस्य-संख्या भी पत्रमें अवश्य लिखनेकी कृपा करें।

प्रत्येक सदस्यसे यह भी प्रार्थना है कि वे कम-से-कम दो-दो नये सदस्य और बनानेकी कृपा करें। जिनके पास दूसरोंको सदस्य बनानेके लिये आवेदन-पत्र भेजे जाते हैं, उनमेंसे कई सदस्य दुबारा अपने ही नामसे कार्ड भरकर भेज देते हैं, किंतु इससे कोई लाभ नहीं। उनको दूसरे सज्जनसे ही आवेदन-पत्र भरवाकर भेजना चाहिये।

विशेष जानकारी एवं नये सदस्य बननेके लिये आवेदन-पत्र निम्न पतेपर लिखकर मँगवा सकते हैं—

मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-प्रचार-सङ्घ, गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम (पौड़ी—गढ़वाल)